

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178732

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/H1.21 Accession No. G.H. 2176

Author सुकुमार

Title नारे-11438

This book should be returned on or before the date last marked below.

तारे

(हड़कम्पी लेखक का ११ युगान्तरकारिणी
कहानियाँ)



श्री० अंचल



मुद्रक व प्रकाशक
केसरीदास सेठ
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

प्रथम
परिचय }

सन् १९३८ ई०

{ मूल्य १)

विषय-सूची



				पृष्ठ
१. सोहाग का सिद्धर	...	...	...	१
२. जागरण	...	...	...	२७
३. विनाश का मूल्य	...	..	...	४१
४. आकाश-दीप	...	...	...	६५
५. मंगल-प्रभात	...	...	...	७६
६. नारी	...	...	...	८६
७. प्रेम का पाप	...	...	...	११६
८. तारे	...	...	...	१५५
९. पापी	...	...	...	१७३
१०. मेरा मुँह	...	...	...	१८३
११. अपराधी	...	...	...	२०७

श्रीरामकुमार भार्गव के करकमलों
में

पुकार

आज सुन लो आज सुन लो ये पिपासा की कथायें

[१]

एक सपना है तमाशा है यहाँ जीवन हमारा
हम यहाँ जलते तृषाकुल है हमारा कुछ न चारा
जब बवंडर सी कहीं की प्यास घिर जलती जिगर में
जो न जलकर बुझ सके ज्वाला सुलगती वह अधर में
जब दृगों में रूप फट पड़ता किसी उन्मादिनी का
जब उमड़ता वह प्रलय सा मोह यौवन बन्दिनी का
आज अंगों से लिपट लें ये मरणवाहन तृषायें
आज सुनते ही चलो ये दुःखभरी जलती कथायें

तारे

[२]

ये समर्पण की डगर पर मिट रहीं प्रतिमा प्रलय की
पूर्ण होती कब विसर्जन वासना किसके हृदय की
कौन पल भर को यहाँ परितृप्ति के आँसू बहाता
इस महातम में नियति के कौन तृष्णा ना लुटाता
आज गाने दो मुझे तुम कामना की दीपमाला
आज सजने दो मुझे यह मदभरी विस्फोटशाला
प्रज्वलित होतीं अनल सी आज अविदित लालसायें
आज सुनते ही चलो ये दुःखभरी जलती कथायें

[३]

एक चिरविरही प्रवंचित एक जिसकी व्योमवाणी
जो स्वयं ही आदि अन्तिम सर्ग वह तृष्णा कहानी
जब यहाँ प्रतिकूल उसासों के प्रखर अंधार जल जल
सुधि सजाते हैं किसी की इन स्फुलिंगों में उमड़ पल
आज चिन्तन है उन्हीं का जो न मिलते इस डगर में
आज आकांक्षा सुनाते बढ़ चलो प्रिय के नगर में
घूमती हैं बान यौवन के लिये जिनकी निशायें
आज सुन लो आज सुन लो ये पिपासा की कथायें

दो

तारे

[४]

यास ! मेरी प्यास अब तक तो कभी बुझने न आई
फिर मिली वैसी न पीने को न वह अनुभूति पाई
रह गया बस यह उमंगों का उदधि गर्जन बिनाशी
किस अपरिचित योजना में ध्रुम चले हम चिरप्रवासी
भूल जा रे ! भूल अम्बर आज उल्कापात अपने
इस प्रवल अन्तर्शिखा में जल गये कितने न सपने
जब न हम सुख जानते कैसे पुलक के गीत गायें
आज सुनते ही चलो ये दुःखभरी जलती कथायें

[५]

हम न ठक पाये कभी अपने हृदय का अग्नि आसव
है छिपाना लालसा कितना कठिन कितना असम्भव !
हम खुले गाते यहाँ पर वासना के गीत प्रतिपल
एक तन्मयता मचाते हम दूरन्त अधीर चंचल
ये जवानी के प्रचुर दिन कौन ठुकराता चला यों
इस महापथ पर अकम्पित कौन मिट जाता चला यों
है मुझे अधिकार कहने का प्रलय सी ये व्यथायें
आज सुन लो आज सुन लो ये पिपासा की कथायें

तीन

तारे

[६]

तुम मुझे गोको न रुकने का हृदय संताप बाहन
तुम थको पर यह न चुकने का विपुल मेरा विसर्जन
तुम जलो पर मैं न बुझने का यहाँ इस जन्म में अब
ज्वाल मेरी है अमर मैं तो उसी में पा चुका सब
मुक्त बन्धनहीन हैं सब आत्मपूरित सुखनियन्ता
एक सीमा में निरन्तर जल रहा मैं आत्महन्ता
पर मुखर होती रहेंगी ये मरण शोषक शिखायें
आज सुनते ही चलो ये दुःखभरी जलती कथायें

[७]

सब पहुँचते हैं वहाँ जो नष्ट कर आगे बढ़े हम
सब बनाते हैं वही जिसको मिटाते मिट चले हम
सब हमें दोषी बताते क्यों न हम तृष्णा झिपाते
क्यों न इस सौन्दर्यनगरी से कसकते मूक जाते
अनुकरण करते चलें ये प्यास के विध्वंस के क्षण
हम विवश, प्रतिकूल जीवन के करें यह विश्व धारण
रुक सकीं ज्वालामुखी की कब निदारुण शोषिकायें
आज सुन लो आज सुन लो ये पिपासा की कथायें

चार

तारे

[८]

जो अधिक अपात ज्यादा क्यों उसा को प्राण रोते
जो प्रलोभन है प्रलय तक क्यों न फिर दुर्दान्त सोते
यह नियति का व्यंग दुर्दम पीसता चलता निरन्तर
वे अलग्ग भी लग्न न पाते शून्य रहते नील अम्बर
यह महा संघर्ष ! चलता चल अरे उद्भ्रान्त मानव
पर जगत सुन ले न कातर वेदना का यह महारव
तम घिरे पर शेष हैं उद्दाम अन्धड़ कल्पनायें
आज सुन लो आज सुन लो ये पिपासा की कथायें

[९]

एक निरुपम दीप्ति अविजानित अपरिचित याद आती
जो दिपाली सी उदित हो शशिकिरण सी रूठ जाती
प्रतिध्वनित होता महासागर चरणध्वनि सुन सुहानी
जो विकलकर लौट जाती वह अनलवाहन हिमानी
जो न प्राणों में समाती जो न लघु उर में सँभलती
एक झंझा सी लिये जो तल वितल में क्षुब्ध जलती
आज आओ तो तुम्हें उन्मादनगरी में रुलायें
आज सुन लो आज सुन लो ये पिपासा की कथायें

सोहाग का सिंदूर

मोहाग का सिंदूर

१

एक ठंडी साँस लेते हुए प्रभा ने कहा—“तो क्या राजीव, हमारा तुम्हारा चिर-संचित प्रेम नष्ट हो जायगा ? क्या तुम्हारी इन बाहुबल्लरियों की सघन छाया में मेरा हृदय-पथिक विश्राम न करने पाएगा ? क्या तुम्हारे इन अधर-पल्लव की ओट में मेरा प्राणपंछी शांति न प्राप्त करेगा ? राजीव, क्या हमारे तुम्हारे प्रेम का यह विशाल उपवन—जिसके लिए हम सोचते थे कि इसी में हमारा जीवन-वृक्ष फैलेगा, फूलेगा और फलेगा—इस प्रकार पलक मारते नष्ट हो जायगा !”

तीन

नीची दृष्टि किये हुए राजीव बोला—“प्रभा कल बाबूजी का जो पत्र आया है, उसे मैंने तुम्हें दिखा ही दिया है। उन्होंने लिखा है कि जिस दिन आखिरी पेपर हो, उसी दिन रात की गाड़ी से चल दो। कल भाभी की चिट्ठी आयी है, उन्होंने भी लिखा है कि चले आओ। अब मैं क्या करूँ। बाबूजी ने व्याह पक्का कर लिया है। हृदय इतना कमजोर है, आत्मा इतनी निर्बल है कि बाबूजी का विरोध नहीं कर सकता। क्या करूँ, कुछ समय में नहीं आता।”

प्रभा ने कहा—“राजीव, मेरे हृदय में जो आंदोलन हो रहा है, उसे तुम क्या समझोगे। दिल में तूफान चल रहा है, अणु-अणु से धुआँ निकल रहा है। १५ दिन परीक्षा के रह गये हैं, परंतु जब पढ़ने लगती हूँ, तब आँखों के सामने धुँधली छा जाती है। उधर भाई साहब की चिट्ठी भी आयी थी। लिखा था कि तुम्हाग यह अंतिम वर्ष है। इसके बाद तुम्हें पढ़ना नहीं है। वह मेरे व्याह की बातचीत भी लगा रहे हैं, परंतु यदि मैं नाहीं कर दूँगी, तो चुप हो जायँगे। तो वोलो राजीव, तुमने क्या निश्चय किया? क्या तुम मुझे अपने प्रेम-साम्राज्य से निर्वासित कर दोगे?”

राजीव—प्रभा, इस समय मैं कुछ सोच नहीं सकता। दिमाग काम ही नहीं करता! क्या करूँ! अभी तक मैं किसी निश्चय पर नहीं पहुँचा।

प्रभा—(आह भरकर) हे भगवन्, क्या हमारी आशालता पर तुषार पड़ जायगा?

×

×

×

राजीव और प्रभा उन्नाव के रहनेवाले हैं। राजीव के पिता

तारे

गवर्नमेंट-सरविस में हैं। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। उसके बड़े भाई वकालत करते हैं। प्रभा के माता-पिता का देहांत हुए एक ज़माना हो गया। उसके भाई डाक्टर हैं। प्रभा और राजीव पड़ोस ही के रहनेवाले हैं। राजीव के कारण ही प्रभा का पढ़ना हो सका है। उसी के आग्रह पर प्रभा भी होस्टल में रहती है।

धीरे-धीरे दोनों का स्नेह-सिंचित मुकुमार समत्व और पिपासा प्रणय में परिणत हो गई। आज उनकी यह दशा कि दोनों भविष्य में होनेवाले विषम वियोग की कल्पना से काँप उठे। प्रभा और राजीव का व्याह किसी प्रकार से असंगत नहीं था। दोनों एक ही जाति के थे। किसी प्रकार की बाधा न थी। परन्तु न-जाने क्यों राजीव के पिता एक पितृमातृ-विहीन बालिका को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने से सहमत न थे।

राजीव भी एक दुर्बलहृदय का अधीर, आदर्शवादी युवक था। उसके 'प्रेम' में प्रेम की अपेक्षा विलास और मौंदर्योपासना की लालसा अधिक थी। वह प्रभा के गुणों पर, उसके उन्नत चरित्र, शील और देव-दुर्लभ मौंदर्य पर ही मुग्ध था। परन्तु अब की बार जब वह घर गया था, तब उसने छिपकर अपनी भावी पत्नी का फोटो देख लिया था और न-जाने क्यों उसके प्रति अनुरक्त हो चला था। एक प्रकार के अस्पष्ट विचार की अनुभूति भी वह कर रहा था। प्रभा के प्रति उसे किंचित् विरक्ति और उदासीनता-सी हो रही थी। संभवतः इसका कारण उसके भावी ससुर की प्रचुर संपत्ति और सम्मान था !

तारे

परीक्षा के तीन दिन और रह गये थे कि राजीव को भाभी का पत्र मिला । पत्र क्या था, रूप और सद्गुणों की किसी अज्ञात प्रतिमा का शब्दचित्र था । उसमें उसकी भावी पत्नी पद्मा के अंग-प्रत्यंग की मार्मिक व्याख्या की गयी थी । पत्र के अंत में परीक्षा के खतम होते ही चल देने का आग्रह था ।

पत्र पाते ही राजीव भविष्य के सुखद स्वप्न देखने लगा । रह-रहकर कोई अज्ञात मूर्ति उसके हृदय की सुकुमार वृत्तियों को मादकता के साथ छेड़ने लगी । रह-रहकर कोई कोमल कलित मूर्त कल्पना उसके नेत्रों के सम्मुख धूमने लगी । उसे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे कोई देवमूर्ति उस कल्पना में आवेष्टित है । उस दिन वह कुछ पढ़ न सका ।

दूसरे दिन जब वह प्रातःकाल चा पी रहा था, उसी समय प्रभा आ गयी । उसका मुखमंडल विपाद की छाया से आच्छादित था । निर्जीव गति से वह कुर्सी खींच-कर बैठ गयी । राजीव मुस्कराते हुए बोला—“आओ, बैठो ! कैसी तैयारी की है !”

प्रभा की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे । उसका मुख ओस से नहलाये हुए रजनीगंधा के कोमल फूल के समान हो गया । रुँधे हुए कंठ से बोली—“राजीव, इस समय यह प्रश्न पूछकर तुम मेरे साथ क्या कर रहे हो, यह शायद तुम नहीं समझते !”

राजीव ने लज्जित होकर कहा—“नहीं, मेरा मतलब यह है कि अब परीक्षा के तीन दिन रह गये हैं, तुम्हारी तैयारी सब ठीक है न ? कोई कठिनाई तो नहीं है ?”

तारे

प्रभा ने कहा—इस समय मुझे जो भयंकर कठिनाई मालूम होती है, उसका निवारण यदि तुम कर देते, तो बड़ा ही अच्छा होता ।

राजीव कुछ न बोला । नीची दृष्टि किये चा पीता रहा ।

थोड़ी देर तक निर्भ्रांत नेत्रों से उसकी ओर देखकर प्रभा ने कहा—राजीव, क्या तुम्हारा यही वह प्रेम है, जिसके लिए तुम कोप के सारे विशेषण खर्च कर डालते थे ? क्या यही तुम्हारा वह प्रेम है, जिसे तुम आत्मिक संयोग के नाम से पुकारते थे ? तुम कहा करते थे कि मेरा प्रेम ध्रुवतारे के समान निर्मल, स्निग्ध और निश्चल है । आज क्या वह ध्रुवतारा टूट गया ?

राजीव ने शर्मायी हुई आँखों को ऊपर उठाते हुए कहा “प्रभा, तुम मुझे दोष देते समय मेरी परिस्थितियों को भूल जाती हो । कल फिर भाभी की चिट्ठी आयी है, लिखा है कि जल्दी-से-जल्दी चलने का प्रयत्न करना । क्या करूँ, कुछ समय में नहीं आता । तुम्हीं क्यों नहीं कोई रास्ता बतातीं । मैं तो किर्तव्यविमूढ़ हो रहा हूँ ।”

प्रभा ने कहा—तो तुम साफ़ इनकार क्यों नहीं कर देते ?

राजीव—मैं दो साल से टाल रहा हूँ । कहीं ऐसा न हो कि उन्हें कुछ।

प्रभा ने कहा—आग्निर यह कब तक छिपा रहेगा ! हम लोग तो अब उस सीमा पर पहुँच गये हैं, जहाँ से लौटना एक प्रकार से जीवन-मरण का प्रश्न है ।

राजीव ने धृष्टतापूर्वक कहा—नहीं प्रभा, यह ठीक न होगा ।

तारे

विद्रोह मच जायगा। इसके अतिरिक्त घर में सब तैयारियाँ हो चुकी हैं। बाबूजी जबान दे चुके हैं। उनकी प्रतिष्ठा का खयाल भी तो मुझे करना चाहिए।

प्रभा पर मानों वज्रपात हुआ। राजीव के इस उत्तर के भीतर से उसकी दुर्बलता, हृदय की डाँवाडोल स्थिति और अस्वीकृति की स्पष्ट ध्वनि निकलती थी।

प्रभा का सारा शोक, सारी कातरता और सारा संताप जैसे अवहेलना के इस प्रखर प्रवाह में बह गया। राजीव का यह उत्तर न था, जहर का बुझा हुआ आघात था। अश्रु-ओस के जिन मोतियों से उसके नयन-कमल आच्छादित थे, उनको तिरस्कार की इन नवीन रश्मियों ने मानों सुखा दिया। यद्यपि वह राजीव के स्वभाव में इधर दो-एक मास से कुछ परिवर्तन देख रही थी, तो भी वह उसकी उत्पत्ति विषम-वियोग की दारुण कल्पना से ही समझती थी। आज उसे राजीव की कायरता, हृदय-हीनता और अपनी नारी-सुलभ सरलता पर क्रोध आ गया। उसका सुकुमार हृदय क्षोभ से सिहर उठा। आज उसे राजीव के इस कलित कलेवर के भीतर साकार कायरता और नीचता दिग्व्यापी दे रही थी। आवेश में आकर वह खड़ी हो गयी और रुँधे हुए कंठ को भरसक साफ करते हुए बोली —“राजीव, तुम अपनी कायरता को पितृ-भक्ति और आज्ञापालन के आवरण में छिपाना चाहते हो ! तुम्हें लज्जा नहीं आती ? परंतु तुम्हारे इस उदासीन उत्तर के भीतर से तुम्हारी विलासलोलुपता और कायरता भाँक रही है। मुझे दुःख है कि मैंने एक ऐसे व्यक्ति से प्रेम किया—हृदय-दान दिया। यद्यपि मेरे लिए तुम्हें

भूलना, तुम्हें अपने हृदय-प्रवेश से पूर्णरूप से निर्वासित करना असंभव है, तो भी मैं तुम्हें भूलने का प्रयत्न करूँगी। ईश्वर ने मुझे सहन-शक्ति दी है। नारी हूँ, स्मृतियों के दाह को भूल जाऊँगी। परंतु राजीव, एक विनय करूँगी, कहीं उस बालिका को भी इसी प्रकार धोखा न देना ! कहीं वह भी तुम्हारे क्षणिक उल्लास का, उन्माद का, प्रेम—उपासना—की वस्तु न समझ बैठे ! इस समय तो तुम्हारा हृदय भावी मिलन के उल्लास से नाच रहा है, परंतु क्या यह महागति चिरस्थायी होगी ? नहीं, मुझे तो संदेह है। जब तुम मेरी प्रेम-प्रतिमा की अवहेलना कर सकते हो और इस नीचता के साथ—तब तुम्हारे लिए कुछ भी असंभव नहीं। ईश्वर के लिए मेरे ही समान मेरी उस बहन के नन्हे-से हृदय को न तोड़ देना ! अच्छा राजीव, अब जाती हूँ। तुम सुखपूर्वक अपनी परीक्षा और प्रस्थान की तैयारी करो। मैं भी तुम्हें भूलने का प्रयत्न करूँगी। देखूँ, कहाँ तक सफल होती हूँ।”

यह कहकर प्रभा चली गयी। राजीव निर्लज्जता-पूर्वक नीचे की ओर मुँह किये हँसता रहा।

उस रात बड़ी देर तक प्रभा को नींद नहीं आयी। पड़ी-पड़ी सोचती रहो—राजीव, तुम मेरे दिल की हालत क्या समझोगे ! मेरे घायल अरमानों की यंत्रणा का तो तुम अनुमान ही नहीं लगा सकते। तुम कल्पना ही नहीं कर सकते कि मेरे दिल पर क्या बीत रही है। आह ! इस समय मेरे हृदय में प्रलय हो रहा है। मैं क्या जानती थी कि जिन चिरसंचित अभिलाषाओं को मैं अपने हृदय-जल से सींचती थी, उन्हीं को, राजीव,

तारे

तुम इस निर्दयता, इस कुटिलता से मसल डालोगे !

किस शीघ्रता से तुमने मेरे प्रेमबंधन को तोड़ डाला । आह राजीव ! तुमने मेरे प्रेम का उपहास किया । मैं मानती हूँ कि तुम्हारी स्त्री तुम्हारे लिए प्रचुर धन, सम्पत्ति, पेश्वर्य और कोमल कलत कल्पनाओं का संसार लेकर आ रही है ; परंतु क्या वह भी तुम्हारे पादपद्मों को इसी ललक के साथ अपने प्रेमवारि से पखारेगी ? राजीव, विश्वनियंता के सम्मुख तुम एक रमणी के, एक प्रेम की पुतली के हृदय को तोड़ने के उत्तरदायी होगे । धीरे-धीरे उसका स्त्रीत्व जाग्रन् होने लगा । उसका हृदय प्रज्वलित हो उठा । नहीं राजीव, मैंने आवेश में आकर कह तो दिया कि मैं तुम्हें भूल जाऊँगी; परन्तु मैं तुम्हारी 'अलख' जगा-जगाकर ही अपने इस छोटे-भे जीवन का अवसान करूँगी । तुम भी, याद करोगे कि किसी ने तुमसे प्रेम किया था ! तुम भी कभी पश्चात्ताप करोगे कि विलास और पेश्वर्य-लोलुपता में पड़कर तुमने प्रेममूर्ति का तिरस्कार किया—भक्ति-भावना को पददलित किया है । आज के तुम्हारे इस व्यवहार ने मेरे प्रेमसूत्र को और भी दृढ़ कर दिया । आज से मैं अपनी पीड़ा में तुम्हारी मूर्ति का अच्छत्र-अभिषेक करूँगी । मेरा जीवन आज से उस गन्धहीन किंशुक-कुसुम की भाँति होगा, जो ऋतुराज के नन्दनवन में फूलकर ग्रीष्मदेव के चरणों में अपना जीवन उत्सर्ग करके अनन्त यात्रा को चल देता है । राजीव, मैं तुम्हारी न सही, लेकिन तुम आज से मेरे हो गये । तुम्हारी मंजुल मूर्ति को मैं आज से अश्रुओं के तप्त स्नान से निखारूँगी ।

तारे

प्रभा इसी प्रकार की आत्मदाहक विचार-धाराओं के प्रखर प्रवाह में डूबती उतराती बही जा रही थी कि निद्रादेवी ने उसे अपनी विहार-नाँका पर खींच लिया ।

×

×

×

तीन दिन बाद परीक्षा शुरू हो गयी । राजीव की तैयारी अच्छी थी । उसकी बुद्धि भी तीव्र थी । प्रभा की तैयारी भी अच्छी ही थी । राजीव प्रभा को देखकर कुछ भेंप-सा जाता । परन्तु प्रभा इस प्रफुल्लता और प्रसन्नता के साथ परीक्षा देने जाती कि उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि उसके हृदय को कोई भीषण आघात पहुँचा होगा । राजीव को देखकर वह एक मार्मिक मुस्कान से उसका स्वागत करती ।

परीक्षा समाप्त हो गयी । राजीव तो उसी दिन घर चला गया, परन्तु प्रभा दो दिन बाद गयी । घर पहुँचकर वह भाई के स्नेहपूर्ण संभाषण, भाभी की मंद-मंद मुस्कान, बच्चों की उल्लासमय सरलता और कलरव में अपनी सारी व्यथा को भूल गयी । भाई की स्नेहवाणी, भाभी के व्यंग्यपूर्ण हास-विलास और बच्चों के वात्सल्य ने उसके हृदय-मरुस्थल को एक बार फिर हराभरा कर दिया ।

२

राजीव और पद्मा का विवाह हो गया । पद्मा रूप, गुण, विद्या और मुशीलता किसी बात में प्रभा से कम न थी । उसके पिता आई० सी० एस्० थे । एक प्रतिष्ठित और धनी राजपुरुष थे । उनका एक बड़ा होटल था और आसाम में चा का बगीचा था । पद्मा भी सीनियर केम्ब्रिज पास थी । अपने

तारे

माता-पिता की वह अकेली लड़की थी और उनकी अनुल सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी भी ।

राजीव के ब्याह में प्रभा ने जिस उत्साह और उमंग के साथ काम किया, उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह एक उपेक्षित रमणी-हृदय है । परन्तु भीतर ही भीतर उसका हृदय रोया करता था । उसके भाई उसकी शादी तय कर रहे थे, परन्तु प्रभा ने साफ़ इनकार कर दिया । राजीव के ब्याह में उसने जिस तत्परता के साथ, जिस लगन के साथ उसकी माँ और घरवालों का हाथ बँटाया था, उसे देखकर राजीव को स्वयं कम आश्चर्य नहीं हुआ था । वह तो सोचता था कि प्रभा उसके ब्याह में आवेगी ही नहीं । परन्तु बारात से लौटने पर जिस उत्साह के साथ उसने उसे बधाई दी और जिस शांति के साथ उसने उनके सुखी जीवन की शुभाभिलाषा प्रकट की, उसे देखकर राजीव और भी स्तब्ध रह गया । वह सोच रहा था कि मेरा यह विवाह-विधान प्रभा के जीवन में बोर अंधकार का मृजन करेगा ; परन्तु जिस उत्साह से प्रभा ने वर-वधू का स्वागत किया, उसे देखकर राजीव को भी उसकी सहनशीलता की प्रशंसा करनी पड़ी । किंतु प्रभा का हृदय जिस तीव्रगति से स्पंदित हो रहा था, उसके मस्तिष्क में जो विस्फोट हो रहा था, उसे राजीव नहीं समझ पाया । प्रभा इस समय अपनी आँखों अपनी संपत्ति लुटती हुई देख रही थी । इस समय उसके प्रेम की बाजी लग रही थी और उसके जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित था । परन्तु वह हृदय पर पत्थर रखकर राजीव और पद्मा का प्रेम-सम्मिलन देख चली ।

पहले ही दिन नववधू पद्मा न-जाने क्यों प्रभा के प्रति कुछ

तारे

आकर्षित हो गयी । न-जाने प्रभा की आँखों में उसे कौन-सी उन्मादपूर्ण विदग्धता दृष्टिगोचर हुई कि वह उसके प्रति एक प्रकार की अनुरक्ति का अनुभव करने लगी । कोई अवसर पाते ही प्रभा से बात करने के लिए उसका हृदय मचलने लगता । प्रभा भी उसे आशीर्वादात्मक दृष्टि से देखती । पद्मा ने यहाँ आकर राजीव की भाभी के मुँह से यह सुना कि प्रभा राजीव की सहपाठिनी रही है । इसलिए वह उसे छेड़कर उसके कालेज-जीवन के अनुभव पूछा करती । उस वार्तालाप में राजीव की चर्चा आ जाती और उस समय पद्मा को एक अभूतपूर्व आनंद प्राप्त होता ।

एक दिन दोपहर को पद्मा के कमरे में पद्मा और प्रभा बैठी थीं । पद्मा अपनी संदूक खोलकर अपना अस्त-व्यस्त सामान ठीक कर रही थी । प्रभा भी पास बैठी हुई देख रही थी । सहसा उसकी दृष्टि एक सोने की डिबिया पर पड़ी । डिबिया के भीतर सिंदूर भरा था । डिबिया बड़ी ही आकर्षक थी और उस पर लिखा था—“सदासोहागिन ।” प्रभा अभी देख ही रही थी कि पद्मा ने उसे ग्योला और थोड़ा-सा सिंदूर लेकर अपनी माँग में भर लिया । ऐसा ज्ञात हुआ कि गोधूलि की धूमिल लालिमा और चटक हो गयी ।

न-जाने क्यों प्रभा को वह डिबिया बड़ी सुंदर लग रही थी । उसने कहा “यह डिबिया कहाँ मिली ?”

पद्मा ने कुछ लजाते हुए कहा—“यह डिबिया इधर से भेजी गयी थी, इसी से सिंदूर लेकर मेरी माँग में भरा गया था । (मुस्कुराकर) तुम्हारी माँग भी कोई भाग्य-शाली पुरुष भरेगा !” अब समय आ गया है ।

तेरह

तारे

प्रभा कुछ न बोली। बड़े-बड़े पूरे खुले हुए नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी। उसका हृदय रह-रहकर एक मूक वेदना का अनुभव करने लगा। पद्मा की नज़र बचाकर उसने एक बार उस डिविया को चूमकर हृदय से लगा लिया।

३

राजीव और पद्मा का व्याह हुए पाँच वर्ष हो गये, परंतु प्रभा ने अपना व्याह नहीं किया। उसने पढ़ना छोड़ ही दिया था, अब अपने शहर के एक महिला-विद्यालय में अध्यापिका हो गयी थी। राजीव को छोड़कर सभी ने उससे विवाह करने को कहा। पद्मा ने भी दो-एक बार कहा, परंतु जब प्रभा एक रहस्यभरी हँसी हँसकर कह देती—‘मेरा विवाह तो हो गया है’—तब वह चुप हो जाती। न-जाने क्यों राजीव को यह साहस न होता था। राजीव उन व्यक्तियों में था, जो मर्यादा और धन के दर्पण में अपने जीवनसुख को देखते हैं। फिर भी ज्यों ही प्रभा से बात करना चाहता, त्यों ही पूर्व-स्मृतियाँ जाग्रत हो जातीं।

धीरे-धीरे पद्मा को यह विदित हो चला कि प्रभा राजीव से प्रेम करती है। प्रभा इसे भरसक छिपाने का प्रयत्न करती, परंतु ज्यों ही वह पद्मा के यहाँ जाती, उसकी आकुल दृष्टि रह-रहकर किसी को खोजने लगती। उसकी आँखें बार-बार जाकर राजीव के मनोज्ञ चित्र पर अड़ जातीं और वह अपनी सारी व्यथा, सारी श्रद्धांजलि और सारी कसक उसी पर केंद्रित कर देती। उस समय उसकी आँखों में न-जाने कल्पनाओं का कौन-सा संसार उपस्थित हो जाता कि पद्मा सब

चौदह

तारे

बातें समझ जाती । पद्मा को यह सब व्यापार देखकर प्रभा के प्रति समवेदना और सहानुभूति होती । द्वेष की अपेक्षा उसे प्रभा के इस निराश प्रेम पर दया-सी आती ।

एक दिन पद्मा और प्रभा उसी कमरे में बैठी हुई थीं, उसी समय पद्मा किसी कार्यवश बाहर चली गयी । थोड़ी देर में जब वह लौटी, तो क्या देखती है कि प्रभा उसी चित्र के पास खड़ी हुई प्रेमातुर दृष्टि से देख रही है । पद्मा बाहर ही दरवाजे के पास छिप गयी । उसने प्रभा को कहते सुना— “हृदयेश ! मैंने तुम्हें अपने हृदय में स्थापित किया है । मैं तुम्हारी आराधना करती हूँ । संसार की आँखों से छिपकर मैं तुम्हारी पूजा करती हूँ । तुम्हारी पूजा में ही मुझे अपने नारी-जन्म की सार्थकता ज्ञात होती है । यदि तुम्हारी पूजा में ही मेरा यह जीवन-पुष्प समर्पित हो जाय, तो कदाचित् मेरे जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी । राजीव ! मेरे प्रियतम ! मैं हृदय, अन्तरात्मा और इन्द्रियों से तुम्हारे सान्निध्य का अनुभव करती हूँ ।”

इतने ही बीच में पद्मा आ गयी और बैठ गयी । तुरन्त ही प्रभा भी उसके पास आ गयी । आज पद्मा प्रभा के इस उदासीन जीवन का कारण जान सकी । वह एक उदार और सुशिक्षित युवती थी । उसे यह देखकर बड़ी वेदना हुई । परन्तु उसने उस समय कुछ न कहना ही ठीक समझा । यदि वह कुछ कह देती, तो कदाचित् प्रभा उसके यहाँ आना भी छोड़ देती । यही सोचकर वह सहानुभूतिमय आत्मीयता के साथ उस करुणा की मूर्ति का निराशमूक-प्रणय देखा करती ।

x

x

x

तारे

आखिर प्रभा बीमार रहने लगी। उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। वह दिन-पर-दिन धुली जाती थी। परन्तु राजीव को देखकर वह अपनी सारी व्यथा, सारी वेदना और सारा परिताप भूल जाती। प्रेम और स्वरूप की वह कलिका प्रभा स्नेहजल से वंचित रहकर कब तक हरी रह सकती थी। रह-रहकर उसका हृदय किसी के प्रेम-सम्बोधन के लिए व्याकुल हो उठता। उसके हृदय में एक हूक-सी उठती।

राजीव भी सब कुछ समझने लगा था। प्रभा की इस रुग्णावस्था का कारण वह अपने दुर्व्यवहार ही को मानता था। पद्मा भी परिस्थिति से बहुत कुछ परिचित हो चुकी थी; परन्तु उस बेचारी के हृदय पर एक भार-सा लदा रहता। वह प्रभा से कुछ कह भी न सकती थी और इधर उसकी यह करुणा-जनक दशा भी उससे नहीं देखी जाती थी। उसने राजीव से सारा हाल कह दिया था, तभी से राजीव भी बहुत ही व्याकुल और उद्विग्न रहा करता था। उसका खयाल था कि प्रभा अपना विवाह कर लेगी और सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेगी; परन्तु उसकी इस प्रकार की प्रेमाहुति देखकर उसका हृदय भी काँप उठता था। कई बार उसने विचार किया कि प्रभा से मिले, उससे प्रार्थना करे और विवाह कर लेने के लिए विनय करे; परन्तु उसका साहस नहीं होता था। वह सोचता था कि एक दफे के शब्दों ने तो प्रभा के जीवन को सुखा दिया है, यदि इस बार मैंने कुछ कहा, तब तो प्रभा के प्राणों पर ही आ बीतेगा। आन्तरिक ग्लानि के वशीभूत होकर वह प्रभा से दूर ही रहता था।

प्रभा के शरीर को इस प्रकार घुलते देखकर डाक्टर साहब

को जो व्यथा और संताप होता था, उसे प्रभा समझकर भी नहीं समझना चाहती थी। उसकी भाभी तो एक दिन डाक्टर साहब के सामने रोने लगी। बोली—प्रभा, अम्माजी को मरे आज पन्द्रह वर्ष हो गये। मरते समय उन्होंने तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में देकर कहा था कि बहू, प्रभा को देखना। इसका जीवन तेरे हाथ है। मैंने आज तक उनकी इस आज्ञा का पालन किया है, परन्तु इधर तेरी यह दशा देखकर मुझे कितना मानसिक क्लेश होता है, कह नहीं सकती। सोते-जागते, उठते-बैठते मुझे तेरी ही फिक्र सवार रहती है। तू कहती है कि मैं शादी नहीं करूँगी, न कर; परन्तु तू सूखी क्यों जाती है। जिस प्रकार कोमल शिरीष-कुमुम लू की ज्वाला से कुम्हला जाता है, उसी प्रकार तू भी कुम्हला रही है। आखिर इसका कारण ?

प्रभा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। नीचे की ओर दृष्टि किये पड़ी रही। डाक्टर साहब भी कुछ सोचकर बाहर चले गये।

४

धीरे-धीरे प्रभा की दशा बहुत बिगड़ गई। एक दिन जिस समय पद्मा पहुँची, उस समय प्रभा मूर्च्छित पड़ी थी। डाक्टर साहब घबड़ाये हुए बार-बार प्रभा के मुख की ओर देख रहे थे और एक दासी दवा लिये खड़ी थी। पद्मा को देखते ही बोले—‘आइए, आप भी देख लीजिए। मेरी समझ में तो यह दो-चार दिन की मेहमान है! चार महीने से थूक में लगातार खून गिर रहा है, परन्तु मुझसे कुछ कहा ही नहीं। आज मेरे सामने ही खाँसी आई और कफ और खून का

तारे

लोंदा गिरा । इसके बाद ही बेहोश हो गयी । अभी तक होश नहीं आया ।

सहसा प्रभा कुछ होश में आयी—कुछ उत्तेजित होकर बोली—कौन, राजीव—प्राणाधिक राजीव ! आह, इतने दिन के बाद पधारे हो ! आओ, मेरे इस निर्जन सूने निकुंज में । प्राण ! अब न जाना । यहीं रहो मधुमास भर । आह प्राणेश ! कितना सुखकर जीवन होगा । मैं राकेश की कल्पना करती हुई तुम्हारे इस मनोहर सुखमंडल को चकोरी की भाँति निहारूँगी और तुम उल्लास के साथ मुझे हृदय से लगा लोगे । आह राजीव, तब हमारा जीवन एक खुमार की भाँति हो जायगा । बीच-बीच में कोई स्वर्गीय तान बिजली की भाँति किसी सुखस्वप्न की तरह आकर काँप उठेगी । एक भंकार प्राणों को भंकृत कर देगी । उस समय यह प्रतीत होगा, मानों वह तान अस्फुट स्वर में यह कह रही है—इस तंद्रा से जगना भी कितना दुःखद और व्यथापूर्ण है । आह प्रियतम ! वे दिन भी कितने सुन्दर होंगे, जब तुम्हारा प्रेम-प्रकंपित संबोधन मेरे शुष्क हृदय में उन्माद की स्फटिक-धारा बहा देगा । तो बतलाओ न प्राण ! मुझे कब तक उस दिन की प्रतीक्षा में रहना पड़ेगा । ऐसा तो नहीं होगा प्राणेश, मैं इस संसार से एक मूक लालसा, एक प्यासी और मूर्तिमयी अभिलाषा, अतृप्ति का अवसाद लिये ही चली जाऊँगी ।

प्रभा जिस समय यह प्रलाप कर रही थी, उस समय डाक्टर साहब बैठे हुए जिस मार्मिक वेदना का अनुभव कर रहे थे, उसे वही समझ सकते थे । आज उन्हें प्रभा की दारुण यन्त्रणा का मर्म मिला । रह-रहकर कोई उनके हृदय को

तारे

मसोसने लगा। प्रभा के उदासीन और विदग्ध प्रेमी जीवन के इस दृश्य को देखकर वह काँप उठे। रह-रहकर उनका हृदय भर आता था। कदाचित् उन्हें ज्ञात होता कि प्रभा राजीव से इतना प्रेम करती है, तो प्रभा का विवाह राजीव के साथ करके ही छोड़ते। चाहे कर्ज लेते—चाहे जो करते; परन्तु अपनी बहन की शादी राजीव के साथ ही करते।

डाक्टर साहब को इन्हीं विचारों में लीन छोड़कर पद्मा धीरे से उठकर चली आयी।

×

×

×

पद्मा ने आकर सब हाल राजीव से कहा, तो उसकी अंतःरात्मा में विद्रोह होने लगा। पूर्वस्मृतियाँ आ-आकर उसके हृदय को टोंचने लगीं। रह-रहकर उसे प्रभा की याद आने लगी। सारी रात वह विचारों में निमग्न रहा। आह ! मैंने प्रभा के ऊपर कितना अत्याचार किया। जितना सुंदर उसका स्वरूप था, उतना ही कोमल और सुकुमार उसका हृदय ! आज राजीव को प्रभा एक बार फिर गुणों की खान जान पड़ी। “आह ! मुझसे कितना प्रेम करती थी। कभी मेरी तबियत खराब होती, तो वह भी कालेज न जाती। मैं कितना भी कहता—‘प्रभा, तुम अपना हर्ज न करो’—परन्तु न मानती थी। रात-रात-भर सिरहाने बैठी रहा करती थी। कितना शीतल, स्निग्ध और सुखद स्पर्श था। आह, सत्य ही परमात्मा ने उसे प्रेम करने की अनंत शक्ति से वरदानित किया है। प्रेम की बलिवेदी पर किस उत्साह और प्रसन्नता से उसने अपनी लालसाओं, अभिलाषाओं और अरमानों की बलि चढ़ायी।

तारे

कितनी ज्वलंत प्रेमाहुति है, कितना अपूर्व बलिदान है, कैसी अनन्य भक्ति है, कितनी हाहाकारमयी विदग्धता है।”

उस रात राजीव को नींद नहीं आयी। उसे ऐसा लग रहा था कि कब प्रातःकाल हो, और कब प्रभा को देखूँ। रह-रहकर घड़ी की ओर देखता था। न-जाने क्यों उसे यह शंका हो रही थी कि शायद प्रभा को न देख सकूँगा। उस समय उसका हृदय दुगने वेग से स्पंदित होने लगता। बार-बार उसके नेत्रों के सामने प्रभा का वही विह्वल और प्रेमपूरित मुख घूम जाता। विलासमय यौवन के उन्मादपूर्ण तिमिराच्छन्न आँधरे को वेधकर बार-बार उसकी दृष्टि प्रभा के उसी उपेक्षित, सौभाग्य-सिंदूर-विरहित मुखमंडल पर जा पड़ती। राजीव को एक-एक मिनट पहाड़ हो रहा था। निद्रा और जागरण के भूले में भूलते हुए राजीव ने किसी प्रकार पाँच बजा दिये। नलिनी के भाग्य और कंज साथ-ही-साथ जग पड़े। पुष्पों का मकरंद पान करता हुआ दोलायमान पवन संसार के तप्त अंगों पर शीतलता की वर्षा कर चला। मंदहासिनी उपा की दिव्य लालिमा किसी सरल और भोले हृदय के अनुरागमय उल्लास के समान फफक उठी। रात्रि का करुण क्रंदन विहगों की काकली में परिणत हो चुका था। सौरभयुक्त पवन हृदय की सुकुमार वृत्तियों को जाग्रत करने लगा।

किंतु राजीव का चित्त और भी उद्विग्न, आशंकित और कंटकित होने लगा। एक अशांति का, पश्चात्ताप का अवसाद उसे घेरे हुए था। आशा और निराशा की तरंगों में डूबता-उतराता वह ज्यों ही चलने को तैयार हुआ, त्यों ही पद्मा

तारे

ने कहा—“ठहरो, मैं भी चलती हूँ। रात को मैंने बड़ा बुरा स्वप्न देखा है, जैसे डाक्टर साहब वगैरह प्रभा के शरीर से लिपट-लिपटकर रो रहे हैं। रह-रहकर मेरा दिल बैठा जाता है।”

राजीव ने कहा—“नहीं, मैं जाता हूँ, तुम पीछे आती रहना। मुझसे अब एक मिनट भी यहाँ ठहरा नहीं जाता।”

५

पद्मा एक सुशिक्षित, मरल, उदार और भावुक रमणी थी। जिस दिन उसने प्रभा को राजीव के तैलचित्र की पूजा-सी करते हुए देखा था, उसी दिन से प्रभा ने उसके हृदय में घर कर लिया था। उसे प्रभा से द्वेष के बजाय सहानुभूति और स्नेह होता था। इधर जब से वह बीमार पड़ी थी, पद्मा उसे रोज़ देखने जाती थी। राजीव से उसने प्रभा की दशा का दिग्दर्शन करा दिया था, परंतु राजीव आत्मग्लानि के कारण नहीं जाता था। पद्मा ने भी राजीव के हृदय को छेड़-छेड़कर प्रभा का पूर्व वृत्तांत पूछ लिया था, और जब से उसने प्रभा का पूर्व वृत्तांत सुना, तब से उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगी थी। राजीव की उदासीनता देखकर उसे कभी-कभी कुछ विरक्ति-सी होने लगती। वह देखती कि प्रेम-प्रतिमा कूर काल के प्रखर जलप्रवाह में धीरे-धीरे विसर्जित होती जा रही है। यह देखकर उसे बड़ा ही क्लेश होता। वह राजीव से कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहती थी। लेकिन कल की प्रभा की उन्मादपूर्ण अवस्था देखकर और उस अवस्था में भी राजीव का नाम सुनकर पद्मा का हृदय शोकावेग से भर आया।

तारे

घर आकर उसने राजीव से बड़े ही रुखे शब्दों में सारा वृत्तांत कहा—“तुम इतने निष्ठुर हो—यह मुझे नहीं मालूम था। करुणा की मूर्ति प्रभा पर तुम्हें तनिक भी दया नहीं आती ! यदि मरते समय उसने तुम्हें न देखा; यदि तुम्हारे स्निग्ध हाथ का स्पर्श उसके मस्तक पर न रहा, तो उसके प्राण शांतिपूर्वक न निकलेंगे। यदि अंतिम समय तुम्हारे करुणार्द्र मुख को वह न देख सकी, तो बुझते हुए दीप के समान उसकी भी अतृप्ति भभकती रहेगी। प्रियतम, यदि मरते समय वह तुम्हारे नेत्रकोटरों में स्नेह की एक बूँद देख लेगी, तो उसका चिरसंचित विषाद और वेदना मिट जायगी, उसके हृदय का भार उतर जायगा और वह सुखपूर्वक अनंत-यात्रा कर सकेगी। यदि अंतिम बार तुमने जाकर उसका प्रेम-निर्माल्य स्वीकार कर लिया, तो वह सुखपूर्वक अपने भौतिक आवरण को त्याग सकेगी।”

हृदय से प्रतिध्वनि इन शब्दों का जो प्रभाव हुआ और प्रातःकाल जिस उद्विग्नता के साथ राजीव प्रभा के यहाँ जाने को प्रस्तुत हुआ, यह देखकर पद्मा को बड़ा सुख हुआ। वह भा जल्दी-से-जल्दी प्रभा के यहाँ जाने के लिए तैयार हो गयी। उसका हृदय मानों कहता था कि यदि आज प्रभा को न देखा, तो फिर वह कभी देखने को न मिलेगी।

जिस समय पद्मा प्रभा के मकान पर पहुँची, उस समय १० बज रहे थे। मकान में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। जैसे ही वह भीतर के कमरे में पहुँची, उसने राजीव की शोकाकुल आत्मविस्मृत मूर्ति देखी। वह प्रभा के पैरों के पास बैठा हुआ था। प्रभा की भाभी, डाक्टर साहब, बच्चे और

तारे

दास-दासियाँ सभी स्तब्ध थे। वह बेहोश पड़ी थी। साँस धीरे-धीरे चलती थी। पद्मा चुपचाप जाकर प्रभा के सिरहाने बैठ गयी।

चारों ओर विषाद छाया हुआ था। बीच-बीच में डाक्टर साहब उठ-उठकर प्रभा की नाड़ी देख लेते। धीरे-धीरे प्रभा को होश आया। पद्मा जो उसके सिरहाने बैठी हुई थी, उसके मस्तक पर हाथ फेरती हुई बोली—प्रभा देखो, वह कौन आये हैं।

प्रभा में मानों जीवनी शक्ति आ गयी। उसने आँखें खोल दीं। बोली—कौन, राजीव ?

पद्मा—हाँ, वही तो हैं। बड़ी देर से बैठे हैं। सुबह ही आ गये थे। तुम्हारी मूर्च्छा तो अब टूटी है।

राजीव ने रुँधे हुए गले को भरसक साफ़ करते हुए कहा—प्रभा, मैं तुम्हारा अपराधी राजीव हूँ। हाय, मेरी ही अवहेलना में तुम इतनी जल्दी संसार में चली जा रही हो। मैंने तुम्हारी हृदय-लतिका को निर्दयता के साथ मसल डाला है। आज मेरे हृदय में भयानक भ्रंशवात बह रहा है। प्रभा, बोलो, क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी ?

प्रभा ने बोलने का प्रयास करते हुए कहा—“राजीव, मेरे हृदयेश्वर ! मैंने तुम्हारी आराधना जिस अनन्य भक्ति के साथ की है, यह उसी का प्रभाव है कि तुम-सा निर्मम आज मेरी जीवित समाधि पर पश्चात्ताप के फूल चढ़ाने आया है। आह राजीव ! मेरी जीवनतरणी सांसारिक बाधाओं को पार करके उस पार लगना चाहती है। मुझे विश्वास है, यदि तुम्हीं इसके नाविक होते, तो मैं अभी इस पर कुछ दिन और विहार

करती। आह ! यदि कहीं तुम्हारा हृदय भी मेरे दिल की धड़कन से स्पंदित हो उठता। राजीव, मैं अब न बचूँगी। मरते समय तुम्हारे मुख को एक बार जी-भर देख दिया, इसी में मुझे संतोष है। मरते समय तक, राजीव, मैंने तुम्हारी आराधना की ; आज क्यों मेरे पैरों के पास बैठकर मुझे पाप-भागिनी बना रहे हो। सच कहती हूँ यदि मैं तुम्हें न देख पाती, तो मेरी आत्मा इस लोभ से तुम्हारी मनोहर छवि के लिए भाँक-भाँककर पलक-पाँवड़े बिछाया करती ! लाओ राजीव, अपना हाथ तो मुझे दो।

पद्मा ने सांत्वना का हाथ उठाते हुए कहा—जरा ठहर जाओ बहन। प्रभा और राजीव कुतूहलपूर्ण दृष्टि से पद्मा की ओर देखने लगे।

पद्मा ने कहा—“प्रभा, केवल सात भाँवरें पड़ने से ही व्याह नहीं हो जाता। तुम्हारा और इनका जब आत्मिक संयोग हो चुका है, तब विवाह-बंधन तो लौकिक कृत्य ही ठहरा न। बहन प्रभा, तुम ऐसी व्याकुल अवस्था में भी अपनी नीरवता, अनुराग, तन्मयता और आंतरिक आसक्ति के कारण एक आदर्श प्रेमिका बन गयी हो। आह ! जब मैं तुम्हारे आत्मसमर्पण और विसर्जन का ध्यान करती हूँ, तब मेरा जीवन-तंतु धक्धक् धड़कने लगता है। प्रभा ! मुझे जीवन-भर यह कलंक बना रहेगा कि मैं ही तुम्हारे प्रेमपथ में बाधक हुई। परोक्ष रूप से मैं इसकी अपराधिनी हूँ और इसी लिए पश्चात्ताप करूँगी। यदि मरते समय तुम्हारी दग्ध आत्मा को कुछ भी शांति मिल गयी, तो मुझे बड़ा सुख मिलेगा। जिस समय मैं आत्मवेदना, अशांति, नैराश्य और विषाद के उस वातावरण का खयाल करती हूँ,

तारे

जिसमें तुम्हारे प्रेमिक हृदय को अपने जीवन की दुःखमयी घड़ियाँ काटनी पड़ी हैं, तो मेरा हृदय काँप जाता और मस्तक श्रद्धा और सम्मान से झुक जाता है। हृदय में एक टीस-सी होती है—एक तूफान विलोडित सागर का सा हाहाकार घहरा उठता है। जब तुमने अपना सोने का संसार ही फूँक दिया और जीवन की सारी लालसाओं, कामनाओं, अरमानों को इन्हीं की भेंट कर दिया, तब यह लौकिक कृत्य ही क्यों रह जाय ? आओ प्राणेश ! देखो यह मेरी सोहाग की डिबिया है, लो, यह मेरा 'सोहाग-सिंदूर' है। इससे तुम प्रभा की माँग भर दो !”

मंत्रमुग्ध राजीव ने कुछ न कहकर चुटकी में सिंदूर भरा और प्रभा की शुष्क माँग उससे भर दी।

“बहन प्रभा, हम तुम एक ही आराध्य की आराधिका हैं और उन दो नदियों के समान हैं, जो भिन्न-भिन्न मार्गों से आकर एक ही अनंत प्रेमसागर से मिल जाती हैं”—पद्मा ने कहा। किंतु प्रभा जैसे मुन्न थी। उसके मुख पर साधना का रहस्य, पंचाग्नि में तप्त स्वर्ण की भाँति, आलोकित हो उठा। आनंद मूक था, उत्सुकता स्तब्ध थी। एक आवेश-जनक प्रसन्नता से उसका हृदय वेग से धड़कने लगा और सुख के इस धक्के को संभालने में वह अपने को असमर्थ प्रकट करने लगी।

अरे, यह क्या ! -पद्मा चीख उठी। डाक्टर साहब और उनकी स्त्री, जो दूसरे कमरे में थे, दौड़कर आ गये ! पद्मा प्रभा के शरीर से लिपटी फूट-फूटकर रो रही थी। राजीव एक हाथ में सिंदूर की डिबिया लिये प्रभा के शव के ऊपर लुटा हुआ-सा झुका खड़ा था। उसके नेत्रों से अश्रु-बिंदु टपक-टपककर सोहाग के सिंदूर से अभिनवाच्छादित प्रभा

तारे

को माँग पर गिर रहे थे, मानों काजल के शैल-शिखर पर
किसी का पुनीत प्रेम-दीपक निर्जीव गति से टिमटिमा रहा हो
और उसके ऊपर तुहिन-बिंदु बनकर नभ से किसी नक्षत्र
की अजस्र धारा गिर रही हो ।



जागरण

जागरण

मोहन

उसका नाम है श्यामा ! सावन की सरिता के समान उसके यौवन की नदी उमड़-उमड़कर सारे शरीर को शराबोर कर रही है । वह कुमुम के समान कोमल, जूही की नव-प्रस्फुटित कलिका-जैसी सुंदर और शीराज्जी मदिरा-सरीखी मादक है । उसके यौवन-सौरभ में मादकता है—उन्मत्त कर देने की शक्ति है । उसके कानों तक खिंचे हुए लोल लोचनों की आड़ से मानों अनंग भाँका करता है । उसकी श्वेत सीपी के समान स्वच्छ आँखों में मधु-मादकता की अजस्र धारा बहा करती है ।

उन्तीस

तारे

मैं अनुभव करता हूँ, जैसे मेरा हृदय उस धारा के साथ क्रीड़ा किया करता है ! उसके उभरे हुए कलित कपोलों पर यौवन की लाली मतवाली होकर दौड़ती है । जिस समय उसके अरुण कपोलों पर ब्रीड़ा का नृत्य होता है, उस समय वे सिद्धरी हो जाते हैं । उसके अधरों पर मधुरिमा छलका करती है ।

जिस समय वह श्यामा के समान अपनी आत्म-संवेदक तान में कंपित कंठ से गाती है, उस समय उसकी दर्दभरी आवाज़ हृदय को निचोड़ने लगती है । उसके स्वर के कंपन के साथ मेरा हृदय भी स्पंदित हो उठता है । कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसकी सारी मर्मांकित व्यथा और वेदना, विदग्धता और नैराश्य उसकी स्वर-लहरी से फूटकर निकल रहे हों ।

वह वेश्या है । लोगों का हृदय उसे देखकर लालसा के हिंडोले में भूलने लगता है । मैं भी एक दुर्बल मनुष्य ठहरा । परंतु न-जाने क्यों मुझे उसके प्रति एक वासना-विरहित आकर्षण होता है । वह सौंदर्य की देवी है । जिस समय अपने गुलाबी नेत्रों से मेरी ओर देखकर एक व्यथापूर्ण मुस्कान से मेरा स्वागत करती है, उस समय मैं स्पष्ट देखता हूँ कि कभी-कभी उसकी व्यथा तुहिनबिंदुओं का रूप धरकर नेत्रों की कोरों के साथ आँखमिचौनी खेलने लगती है । मैं उसमें एक प्रकार की आत्मीयता, अपनापन और अनुराग पाता हूँ । इच्छा होती है कि हृदयमंदिर में उसे बिठा लूँ । हृदय से एक ध्वनि निकलती है—श्यामा भोग-विलास की सामग्री नहीं है, वह आराधना की वस्तु है । आह, जिस कुसुम को देवता

तारे

का गलहार बनना था, वह आज रसिक भ्रमरों के भोग-विलास का उपकरण-मात्र है !

श्यामा न-जाने क्यों मुझे बहुत चाहती है । मुझे देखते ही मानों उसे स्वर्गीय सुख मिलता है । कभी-कभी देखता हूँ कि वह मेरे मुख की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखा करती है । उस समय उसकी आँखों में वेदना, व्यथा और करुणा का एक संसार उपस्थित हो जाता है । कभी-कभी जब वह मेरे हृदय-प्रदेश में अपना मुख छिपाने का आयोजन करती है, तब उसकी व्यथा-विभावरी बरस-बरसकर मेरे वक्षःस्थल को भिगा देती है । कई बार इच्छा हुई कि उसकी व्यथा की कथा सुनूँ, उसके दर्द की तसवीरों को देखूँ ; परंतु न-जाने क्यों साहस नहीं होता । जब वह स्वयं मुझे देखकर अपने अंतर्दाह को सुलाती है, तो मैं ही क्यों उसे जगाऊँ ।

मैं कोई बहुत अमीर नहीं, कोई बहुत सुंदर भी नहीं हूँ ; परंतु फिर भी श्यामा मुझे देखकर कृतार्थ-सी हो जाती है । कई बार मुझे देखकर—मेरे पास बैठने के लिए अच्छे-अच्छे लखपतियों को धता बता दिया । यह मैंने प्रत्यक्ष देखा । तो फिर क्या मुझमें उसे कोई खास बात दृष्टिगोचर होती है कि वह मेरे लिए अपने व्यापार की परवा नहीं करती ? इन्हीं कारणों से कभी-कभी मैं उसे एक वेश्या की परिधि से दूर—बहुत दूर—देखने लगता हूँ ।

अभी उसी दिन की बात है । दस बजे रात को मैं श्यामा के यहाँ पहुँचा । वह छत पर दुग्धफेनिल शय्या पर बैठी हुई कोई उपन्यास पढ़ रही थी । आकाश में रसिक चन्द्र अपनी प्रेयसी रजनी के प्रशांत नीले अंचल को चंचल कर रहे थे ।

तारे

श्यामा के सिर के बाल कुछ बिखर रहे थे। धानी रंग की साड़ी की ओट से मानों उसका सौंदर्य भाँक रहा था। ठंडी-ठंडी हवा के मीठे झोंकों में वह उड़ रही थी, मानों पीपल के कोपल वसन्ती वायु में भूम रहे थे। उसकी सुकुमार पलकें भारी हो रही थीं। उनमें न तो पूर्ण जागृति ही थी, और न नींदभरी सादकता। जाकर चुपके से पीछे बैठ गया और अपने हाथों से उसके अलसाये नेत्रों को मँद लिया। श्यामा हँसने लगी, मेरे हाथों को छुड़ाने का प्रयत्न करती हुई बोली—कौन, मोहन ? मैं जान गयी। तुम्हीं हो।

मैं—हाँ, मैं ही हूँ।

श्यामा—भला कहीं यह सुखद स्पर्श छिपा रह सकता है।

मैंने कहा—श्यामा, एक बात पूँछूँ। बताओगी ? सुनो मैं कोई अमीर नहीं, फिर भी तुम मेरी ओर क्यों इतना आकृष्ट होती हो ? उस दिन जब मैं तुम्हारे पास बैठा था, तुमने मेठजी को उलटे पाँव लौटा दिया। मुझमें ऐसी कौन-सी बात है, जो तुम अपना नुकसान करके भी मुझे इतना प्यार करती हो ?

श्यामा की हृदय-वारिदमाला में किसी की स्मृति तड़ित-सिंदूर की भाँति चमक गयी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसका हृदय बरसने लगा। उसने मेरी गोद में अपना मुँह छिपा लिया और उसके तप अश्रु परिमुक्त होकर टपटप गिरने लगे।

मैंने जेब से रुमाल निकालकर उसके मस्तक को ऊपर उठाया और अश्रु-सीकरों को पोंछने लगा।

उससे न रहा गया। बोली—“मोहन, मैं वेश्या हूँ न, मुझे

तारे

तो प्रेम करना आता ही नहीं ! यही तो तुम्हारा मतलब है न । मगर पैसे से दिल नहीं खरीदा जा सकता । तुम सोचते होगे—वेश्या प्रेम करना क्या जाने । मैं जो कुछ कहूँगी, उस पर तुम विश्वास भी तो न करोगे । लेकिन तुम्हें देखकर मेरा हृदय न-जाने क्यों विस्मृत स्मृतियों के जागरण के कारण मचलने लगता है । मैं तुम्हारी पूजा करती हूँ—तुम मेरे सर्वस्व हो । तुम्हें देखकर मुझे संसार का ऐश्वर्य, वैभव और सुख सब व्यर्थ प्रतीत होते हैं । रह-रहकर हृदय में यह लालसा उठती है कि तुम्हारी प्रेमबहिया में बहते-बहते ही मेरे जीवन का अंत हो जाय । रह-रहकर यही भावना होती है कि क्या तुम्हारे प्रेमपीयूष के पीने का, तुम्हारे पदपद्मों की आराधना करने का अधिकार मुझे नहीं ?

श्यामा का ऐसा सुकुमार और विशाल हृदय देखकर मैं अपने को भूल-सा गया । उस दिन से उसको और भी ज्यादा प्यार करने लगा । मैं कुछ ऐसा सोचने लगा, मानों श्यामा वेश्या नहीं । प्रेम की इस मंदाकिनी में हम दोनों बहे जा रहे थे । उसी में जीवन का सुख था—जीवन की मधुर-हाम्यरेखा थी । उमंगें उभर रही थीं, कल्पनाएँ उड़ रही थीं । श्यामा ने प्रेम का अनंत संगीत छेड़ दिया है, जिसके ताल में प्रेम है—स्वर में प्रेम है ।

और वही संगीतधारा मेरे हृदय को परिलामित कर रही है ।

×

×

×

श्यामा

मैं वेश्या हूँ । लोग कहते हैं, वेश्याओं के हृदय नहीं होता;

तैंतीस

तारे

परंतु मेरे हृदय के सुकुमार स्थल तो अभी तक आर्द्र हैं। मोहन को देखकर मुझे किसी की याद आ जाती है। वही उन्नत ललाट—वही प्रशांत वक्षःप्रदेश—वही मधुर मुसकान और हृदय में आलस्य और तंद्रा बिखेर देनेवाली वही आँखें। न-जाने कितने युवकों से मैंने प्रेम प्रदर्शित किया—‘प्यारे’ कहकर उन्हें पुकारा, उनके आलिंगन में भी बँधी; परंतु अंत में उन्हें ठुकरा दिया। नव-कुसुमों को मसलने में ही जीवन का मुख समझा—अपनी स्वार्थसाधना में उन्हें भग्न कर दिया।

उस समय यही प्रतीत होता था कि मेरे हृदय की कुकुम-क्यारियों में नैराश्य लोट रहा है। जिस समय मैं विलास के झरोखों से झाँकती थी, उस समय तामसी रात्रि हृदय की प्रतिकृति-सी ज्ञात होती थी। संपदा, गेश्वर्य, विलास और मुख की सभी सामग्रियाँ मेरे पास—परंतु ज्ञात ऐसा होता मानों कुछ भी नहीं है।

आज मैं मोहन में किसी को पाती हूँ। किसको पाती हूँ—कह नहीं सकती। जीवन-वनस्थली में स्नेहसिंचित होकर बढ़नेवाले कल्पना के सुकुमार पौदे झुलस चुके थे, ऋतुराज-मोहन ने आकर मेरे उजड़े हुए हृदयोद्यान में पीतिमा की वर्षा कर दी। मोहन को मैं कितना प्यार करती हूँ, यह कैसे कहूँ—कैसे बतलाऊँ। उन्हें देखकर जो मुख मिलता है, उसका वर्णन कैसे करूँ—उसकी अनुभूति करके हृदय स्पंदित होने लगता है। जिस समय वह मेरे वक्षःप्रदेश पर अपना गिर रखकर मेरे मुख की ओर अधीर प्रेम की दृष्टि से देखने लगते हैं, उस समय मैं उन पर बलिहार जाती हूँ। जिस समय वह अपने अधरां

तारे

के मधुर प्रवाह में मुझे शराबोर कर लेते हैं, उस समय मैं कल्पना के दूसरे लोक में भ्रमण करने लगती हूँ। जिस समय वह मेरे श्रमकणों को पोंछते हुए मुझे हृदय से लगा लेते हैं, उस समय जैसे आत्मविस्मृति में लीन हो जाती हूँ।

परंतु मोहन को देखते ही मेरे अतीत की भग्न स्मृतियाँ एकत्रित होकर वर्तमान पतन का उपहास करने लगती हैं, अंतस्तल की पीड़ा हृदय को मथने लगती है।

जब मुझे मोहन की उस साध्वी सुंदरी पत्नी का स्मरण हो आता है, उस समय तो हृदय झुलसने लगता है। रह-रहकर यही इच्छा होती है कि जाकर उस सौभाग्यवती की चरणधूलि अपने मस्तक पर लगा लूँ।

एक दिन मोहन मेरे कपोलप्रदेश पर खेलते हुए, केशकलाप को हटाते हुए बोले—“श्यामा, तारा की तबियत जग ज़्यादा खराब है, मैं शायद कुछ दिन न आ सकूँ।”

मेरे हृदय में आत्मवेदना का भयानक भंभावात बहने लगा, दिल में तूफान-सा चलने लगा। हाय, एक रमणी के अंत का कारण मैं हो रही हूँ। कभी जो किया था, उसे अब भोग रही हूँ; अब जो करूँगी—न-जाने कब भोगूँगी। न-जाने कब कौन-से पाप किये थे कि इस जीवन में तो रूप का क्रय-विक्रय किया; किंतु आज जो करूँगी, किसी का सुख-मोहाग छीनकर उसका हृदयप्रदेश जलाऊँगी, उसका न-जाने कैसा अंत होगा! आज पतितावस्था की इन काली घटाओं के बीच से गुज़र रही हूँ। नहीं—मैं अपने इस जीवन का अवसान करके उन्हें सदैव के लिए हटाऊँगी—प्रायश्चित्त करूँगी—उसकी रक्षा करूँगी।

तारे

ऐं— उस दिन रात-भर मुझे नींद नहीं आयी । रह-रहकर हृदय में एक टीस-सी होती रही । मैंने तारा का जीवन नष्ट किया ! उस सती की कोमल कल्पनाओं और कमनीय कामनाओं को पीस डाला ! मुखस्वप्नों को मिटा दिया ! हाय, तारा के हृदय में नैराश्य की कैसी दुर्दान्त ज्वाला जल रही होगी ! आज मालूम हुआ कि मैं वेश्या ही हूँ—कितनी निर्मम, कितनी हृदयहीन और कितनी कठोर । एक वह तारा है—प्रियतम की चरणरज पर अपने मुखस्वप्नों को निछावर कर रही है । दूसरी मैं हूँ, जो उसका सर्वस्व-हरण करके उसी के सोहाग में अपना सोहाग, उसी के शृंगार में अपना शृंगार और उसी के प्रियतम में अपने प्रियतम की प्रतिमूर्ति देखती हूँ । किंतु वह मेरे भी तो हैं न ! मैं वेश्या हूँ, न-जाने कितनी युवतियों के प्रेमतंतु को तोड़ चुकी हूँ । उनके सोहागसुख को रूप और वासना की होलिका में जला चुकी हूँ । न-जाने कितनी मुदित मधुकरियों के गलहारों से अपना मनोरंजन करके उन्हें जीवन की मरीचिका में भटका चुकी हूँ । किंतु आज मेरा हृदय उमड़ पड़ा है । मैं पहले रमणी, और इसके बाद वेश्या । यदि कोई मेरे जीवनाधार को इसी प्रकार मेरी ओर से विमुख कर लेता, तो क्या मेरी अन्तरात्मा पागल न हो जाती ! मुझे याद आ गयी, जब एक बार मेरा भी जीवन विज्ञत और विलिप्त हो गया था । यदि तारा उन्मादिनी हो गयी, तो इसमें आश्चर्य ही क्या । यदि प्रेम ही भाग्य में होता, तो आज रूप की दूकान क्यों ग्योलती—यौवन का सौदा क्यों करती । मोहन, मैंने तुममें क्या पाया—कुछ नहीं कह सकती; किंतु तुम्हीं पर मैंने शेष जीवन की सारी साधना केंद्रित कर दी । तुम्हारे हृदय की विशालता

तारे

में अपनी प्रतिमूर्ति देखी । परंतु नहीं—अब मुझे दूर—इसमें भी दूर पाओगे ।

x

x

x

मोहन

आज कई दिन से तारा की तबियत ज्यादा खराब है । रह-रहकर उन्मादिनी की भाँति प्रलाप करने लगती है । उसकी दशा देखकर हृदय रोने लगता है । मेरी अवहेलना ही उसकी इस दशा का कारण है । मैंने भी एक वेश्या के प्रेम में पड़कर प्रेम की पुतली का तिरस्कार किया । ऐं ! जो तारा प्रेम के कोमल तंतुओं पर दोलायमान होती थी, वही आज नैराश्य और प्रतारणा के महागर्त में पड़ी है !

आज तीन दिन से श्यामा के यहाँ नहीं जा सका । क्या मोचती होगी । इधर तारा की अवस्था भी इतनी चिंतनीय और करुण है कि छोड़ने का साहस नहीं होता । रह-रहकर उन प्रेम-घड़ियों की स्मृति आ-आकर हृदय को आंदोलित करने लगती है । तारा मेरी ही उदासीनता के कारण अपने जीवन से ऊब गयी !

न-जाने कैसे तारा को सब भेद मालूम हो गया है । रह-रहकर चौंक उठती है—देखो, वह आ रही है । अपने सम्मोहन-जाल में तुम्हें फँस लेगी । नहीं, मैं तुम्हें अपने हृदय-स्पंदन में छिपा लूँगी । मेरे ही तो तुम हो । तुम्हारी आराधना केवल मैं ही कर सकती हूँ । तुम्हारी प्रेम-कादंबिनी केवल मेरे ही ऊपर बरसे और उसकी सारी शीतलता और स्निग्धता केवल मेरे तम अंगों में ही रह जाय ।

सैंतीस

तारे

कल ही कह रही थी कि ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तुम चले जाओगे ।

आज सुबह से तबियत कुछ सँभली, तो कुछ बातें भी करती रही और रह-रहकर मेरी ओर हृदय को कसका देनेवाली दृष्टि से देखती रही । न-जाने कौन-सी प्यास उन आँखों में भरी हुई है कि मेरी ओर देखा ही करती है । ऐसा प्रतीत होता है, मानों नेत्रों के कंपित पट पर मुझे सदा के लिए आवेष्टित कर लेगी ।

तीसरे पहर का समय था । तारा की तबियत फिर बिगड़ चली । बोली—अब न बचूँगी । मेरा हृदय सुलग-सुलगकर राख हो गया है । जीवन भार-सा हो गया है । हृदय के साथ ही जीवन का सारा सुख जलकर भस्म हो चुका है, जीवन के सुखस्वप्नों के सुनहले संसार मिट गये हैं । परन्तु अब मरते समय तुम मुझे छोड़कर कहीं न जाना, नहीं तो मेरा प्राण-पपीहा एक बार तुम्हें भर-नेत्र देखने के लिए तड़पता रहेगा ।

सहसा एक श्वेत साड़ी पहने हुए श्यामा ने प्रवेश किया । उसके मुख पर एक स्वर्गीय आलोक था, ताम्बूलरहित ओष्ठों पर एक दिव्य मुसकान थी । मैं काँप उठा । श्यामा जाकर तारा के पैरों के पास खड़ी हो गयी और अपने मस्तक पर उसकी चरण-व्रलि लगाकर बोली—देवि, मैंने तुम्हारा जीवनधन हर लिया था, आज वही तुम्हें लौटाने आयी हूँ । पहले—बहुत पहले—वह मेरे पास था । कुछ समय तक मेरे पास रहा, परन्तु फिर तुम्हारे अधिकार में चला गया । उसे तुमसे फिर छीनने-वाली मैं ही हूँ । लो, आज तुम्हें वापस करती हूँ । अब वह तुम्हारे है । सावधानी से, अपने सर्वस्व की रक्षा करना ।

तारे

ईश्वर सदैव तुम्हारा सौभाग्यसिंदूर उषा के समान अरुण रक्खे ।

इतना कहकर उसने अपनी जाकेट के भीतर से एक पोटली निकाली और तारा के हाथों में उसे दे दिया । फिर एक बार मेरी ओर सतृष्ण और मनुहारभरी दृष्टि से देखकर चल दी ।

तारा पड़ी हुई थी । न-जाने कौन-सी शक्ति —कौन-सी चेतना उसमें आ गयी कि उठकर बैठ गयी । जैसे प्राण आ गये, जीवनज्योति प्रज्वलित हो उठी । पोटली खोलने लगी । उसमें मेरा एक पुराना फोटो, कुछ प्रेमपत्र और एक अँगूठी थी, जिसके एक ओर हाथीदाँत पर मेरी ही एक छोटी-सी तस्वीर बनी हुई थी और दूसरी ओर सोने पर खुदा था—कमला ।

“कमला” ?—मेरे सामने मेरा अपना ही अतीत संसार विद्युत् की भाँति चमक गया । नेत्र-पटल पर दांपत्य-जीवन की दस वर्ष पूर्व की एक करुण घटना घूम गयी । प्रतिहिंसा और प्रतारणा के रूप में एक निर्वासित-विस्मृत नारी की कातर मूर्ति स्मृतियों के साथ आँखमिचौनी खेलने लगी ।

हृदय-पटल पर कमला की श्यामा मूर्ति अंकित हो गयी ।

एक बार तारा की ओर देखकर मैं कमला की ओर बढ़ा, परंतु वह अब बहुत दूर जा चुकी थी ।



विनाश का मूल्य

विनाश का मूल्य

१

जीवन मदिरा का लबालब भरा प्याला है ; छलका, कि फिर हाथ नहीं आता । प्यासी ज़मीन उसे सोखने के लिए मुँह बाये-सी रहती है । लड़कपन की लहर जब जवानी में और जवानी की उमंग जब बुढ़ापे में याद आ जाती है, तो कलेजे को चीरती हुई चली जाती है । तब बुढ़ापा उसका स्मरण करता है शैशव के भोलेपन और जवानी के मोह के साथ-साथ ; इच्छा करता है कि उनका वात्सल्य प्राप्त करूँ—बलवती आशा की तरंगों में भूलता है कि वह उसे प्राप्त होगा । पर उस समय कहीं कुछ भी नहीं । लड़कपन ने उस प्याले की कुछ

तेतालीस

तारे

बूँदें लों—जवानी ने उसे साफ़ कर दिया, और बुढ़ापा खुमार से लड़खड़ा रहा है। लड़कपन की सुपमा का वह स्वप्न देवता है; जवानी के लावण्य को उन्हीं खुमारभरी आँखों से पान करने की वह अभिलाषा करता है। अपने पलंग पर लेटी हुई सुलोचना रात्रि के तीसरे पहर में उसी की तलाश कर रही थी।

सावन की रात। थोड़ी-बहुत से कुछ ज्यादा बूँदें गिर चुकी थीं। काली घटा का अन्धकार हट गया था और उस पहले से अधिक स्वच्छ और नीले आकाश पर तारे निकल आये थे, मानों बहुत-सी किशोर स्वर्णआभाएँ आ-आकर अनन्त नीलिमा की इस उमड़ती हुई सरिता की लहरों पर खेल-खेलकर स्नान कर रही हों। एक बुकदार नीली साड़ी पहनकर रजनी सामने ही विलास करने लगी। आज माथे पर पूर्ण चन्द्र की टिकली न थी, वरन् अर्द्धचन्द्र की मृदु मुस्कान थी।

सुलोचना से न रहा गया। रूप को रूप का आकर्षण होता है—सौन्दर्य को देखकर सौन्दर्य और प्रमोद को देखकर प्रमोद खिंचता है। रजनी की शोभा उस समय सुलोचना पर भूम रही थी और सुलोचना उसे अपने में व्याप्त कर लेना चाहती थी। सुलोचना उठ बैठी। थोड़ी देर तक तो पलंग पर बैठी रही; फिर एक झटके से उठी और अपनी छत की मुँडेर के एक कोने में आकर खड़ी हो गई। उसने रजनी की शोभा उतार देने का निश्चय किया; रजनी उसे अच्छी तरह देख सकती थी।

सुलोचना की आकृति पर उस समय न तो वह नींदभरी मादकता थी, और न पूर्ण जागृति ही। वह अर्द्धसुप्त और

तारे

अर्द्धजागृत थी और इस स्थिति में, मानों सुषुप्ति और जागृति का सम्मिलन हो रहा हो - दोनों चेतना की अविरल धारा की ओर जा रही हों ।

मुलोचना के सिर के बाल कुछ बिखर रहे थे । धानी रंग की साड़ी प्रकाश का अनुभव कर रही थी । ठंडी-ठंडी हवा के मीठे भीने भोकों में वह उड़ रही थी. मानों पीपल के सुकुमार कोपल वसन्ती वायु में भूम रहे हों ; छज्जे में वर्गाकार झरोखों से नवीन पल्लव चिपक रहे थे । मुलोचना ने एक बार फिर रजनी की ओर देखा । बोली—इस समय क्या कर रही हो ?

रजनी—संसार का सुख लूट रही हूँ ।

मुलोचना ने हँसकर कहा—सुख का समय तो निकल गया ।

रजनी—जो निकल गया, वह निकल गया । अब जब फिर जगकर उठी हो, तो नये सिरे से सुख लूटो । जब तक जग रहे हैं तभी तक तो सुख है । मैं तो सोयी नहीं ।

मुलोचना—अब इकट्ठे सोओगी और शायद देर तक के लिए ! हाँ, मैं तो सो गयी थी, पर तुम्हारे रूप के प्रकाश ने मुझे जगा दिया ।

रजनी—(हँसकर) अब तो अन्त समय आ रहा है । जीवन का इतना समय बीत गया । अब क्या है, अब तो थोड़ा-सा और है ।

मुलोचना—अब तो इस समय आगे ही आगे की सूझती है । क्यों जी, मर्द लोग भी इसी तरह सोचते होंगे ?

रजनी—हाँ, क्यों नहीं । जिस तरह हम लोग हैं, वैसे ही मर्द लोग भी तो हैं । जिस तरह जीवन की काली घटाओं के भीतर से मैं गुजरी हूँ, उसी तरह तुम भी ; और भी वैसे ही

तारे

गुजरी होंगी—गुजर रही होंगी। मर्द लोगों पर भी तो वैसी ही बीतती है।

मुलोचना—हजारों बार तो देखा है।

रजनी—हाँ, उस दिन से आज तक यह न जाना कि मुहब्बत है क्या !

मुलोचना—मुहब्बत ही अगर भाग्य में होती, तो मुहताज होकर भी उसे क्यों न पाते।

रजनी—अब तो ढलता हुआ समय है। जवानी में संसार को धोखा दिया—बुढ़ापे में उसका अंजाम भोगेंगे।

मुलोचना—दुनिया ने अपनी तरफ़ खींचा ; मगर मुहब्बत ने भुलावा दिया। काश ! मुहब्बत ही अपनी छोटी-सी दुनिया—दौलत होती तो आज सोचने की जरूरत न पड़ती। जाओ, सो जाओ।

रजनी—मैं तो जा ही रही थी। तुम अलवत्ता जग पड़ी हो।

मुलोचना वहीं खड़ी रही। थोड़ी देर बाद उसने नौकरानी को जगाया और पान लगाने को कहा। कमरे में हाँडी जल रही थी। वह उधर चली गयी। मुलोचना को नोद नहीं आ रही थी। रजनी की यह बात उसे बार-बार याद आ रही थी—“तुम तो अलवत्ता जग पड़ी हो”

२

तो मुलोचना सचमुच जग पड़ी थी ?

हाँ, जिस प्रकार नवयौवनागत बालिका बेसुध, सुगंध और प्रमोदशील निद्रा से चौंककर—भपटकर उठ बैठती है और अपने ‘उनको’ सामने खड़े हुए, मनुहारभरी दृष्टि से अपने मुख

तारे

की ओर निहारते हुए देखकर, लजाकर अपना स्नेह-पुलक-आन्दोलित अस्तव्यस्त परिधान ठीक करने लगती है, उसी प्रकार सुलोचना भी यकायक चौंककर—जगकर अपनी जीवन-पुस्तक के अस्तव्यस्त अंचल को ठीक करने लगी। रह-रहकर अतीत की वे झिलमिल कविताएँ—जो उसने बड़ी साध से, अनुराग के एक-एक बूंद से, मधु की निखरी हुई भाषा में लिखी थीं—स्मृति संसार में गुँजने लगीं। सुलोचना के बड़े-बड़े अपराजिता की कलियों की भाँति खिले हुए नेत्रों ने, जिनमें अब जीवन-मदिरा का गुलाबी खुमार मुर्मा बनकर छाया हुआ था, देखा—“एक दिन यौवन की अरुण किरणवेला में जो मूर्ति कुसुम-गंध की भाँति मदिरा की न-जाने किस अज्ञात दिशा से आकर उसके स्पर्दनशील हृदय में बैठ गयी थी और जिसे जवानी—अन्धी जवानी के मदभरे अन्धकार ने अपने तिमिराच्छन्न अंचल में छिपा लिया था, वह जागरण की इस प्रकाश-वेला में धुँधलेपन के आल-बाल से निकलकर कल्पना की सुमन-राशि में वनदेवी-सी खड़ी मुस्करा रही है। सुलोचना सिहर उठी। वही है—आह ! हाँ, वही मूर्ति तो है।

सुलोचना की चेतना न-जाने किन स्मृतियों की—किस कल्पना की लहरियों से आन्दोलित हो उठी और उसे वे दिन याद आने लगे। उस समय वह सुलोचना तो थी, परन्तु संसार उसे ‘सुलोचना’ न कहकर सरला के नाम से पुकारता था। गरीब मा-बाप की इकलौती बेटी सरला मानों उन्हें दरिद्रता का उपहार बनकर मिली थी। हजारों बालिकाओं का सौन्दर्य विधाता ने सरला को दे डाला था। न-जाने कितना राशि-राशि यौवन—जो शायद हजारों नवयौवनाओं के लिए भी अधिक

था—विधाता ने उसी के अंगों पर उँडेल दिया था। उन मैले, कुरूप और विकीर्ण वस्त्रों के भीतर से यौवन फूटा पड़ता था, मानों टूटे हुए जीर्ण गंदे प्याले में गुलाबी शीराजी मदिरा अँगड़ाइयाँ ले रही हो, मानों पंकिल जलराशि में उन्मद अलस कमलिनी की सुपमा मुस्करा रही हो और समीरण के चंचल भोकों पर अपनी उन्मत्त मधुमादकता का भार—जो उससे सम्हाले नहीं सम्हालता—रखने का उपक्रम कर रही हो। न-जाने किस अविजानित आह्लाद से—अज्ञात पुलकावली से उसका हृदय थरथरा उठता था—रोम-रोम से उल्लास-सुहास की स्वर्णाभाँ फूट पड़ती थीं। कौमुदी विभोर विभावरी में जब उसकी दृष्टि ऊपर आकाश की ओर उठ जाती, तो वह राकेश की ओर मुग्ध अनुराग-भरे नेत्रों में देख-देखकर न-जाने क्या क्या सोचा करती। उसी समय न-जाने किधर से आकर मन्द समीरण उसके पुलकित हृदय को एक अज्ञात मधु आश्वासन-मा दे जाता। कभी-कभी न-जाने क्यों वह सिमटकर, आशंकित होकर, काँपकर अपने-आपमें छिप जाना चाहती थी। कल्पना की उत्ताल तरंगों में जब उसका सौन्दर्यदुकूल भीग जाता तो वह बेसुध होकर सिहर उठती।

आज रात के तीसरे पहर में सुलोचना उन्हीं दिनों की मधुमय रोमांटिक स्मृति से विचलित होकर आंदोलित हो उठी। उन्हीं दिनों—जीवन के उसी प्रथम वसन्त में सुलोचना ने उस भुवनमोहिनी मूर्ति को अपनाना आरम्भ किया था। जिस समय सुन्दर स्वच्छ मूल्यवान् वस्त्र पहने, बाल सँवारे रूप-माधुरी का सौरभ बिखेरती हुई साइकिल पर वह मूर्ति सामने से निकल जाती, उस समय न-जाने क्यों सरला सरला उसे देखकर

निहाल हो जाती । घंटे-भर पहले से वह आकर दरवाजे पर खड़ी हो जाती और उस मूर्ति के आने की मधुवेला जान कर अपनी उत्सुक अधीर प्रीति-सुकुमल भावभरी आँखें बिछा देती । इतने ही में घंटी की आवाज सुनकर वह मनुहारभरी दृष्टि से बाहर की ओर देखने लगती । परंतु ऐं, यह तो वे न थे ! उसकी उत्सुकता को एक धक्का-सा लगता और वह निराश-सी होकर फिर देखने लगती । अन्त में इसी प्रकार न जाने कितनी बार धोखा देकर वे अपनी मदभरी आँखों से मधु-मदिरा की बूँदें छहराते हुए आते और वसंत के मलय-समीर के झोंकों की भाँति निकल जाते एवं छोड़ जाते सुलोचना के लिए पीड़ा का एक मीठा वातावरण ।..... इसके बाद तीन बजे वह फिर आकर दरवाजे के पास खड़ी हो जाती और उसी ओर सलज्ज मुग्ध नेत्रों से देखा करती । इतने में तीन-चार लड़कों से घिरी हुई वह मूर्ति निकलती और उसकी चेतना को छेड़ती हुई—मधुमूर्च्छित पीड़ा का पट खोलती हुई चली जाती । सरला सरल तरल नेत्रों में कौतूहल, प्रश्न एवं विस्मय का संसार लेकर उसी ओर देखती रह जाती ।

..परन्तु एक दिन न-जाने समीरण के किस झोंके ने—मदिरा के किस आवेग ने—चन्द्र के निखरे हुए दुग्धफेनिल प्रकाश की किस रश्मि ने—सौंदर्य-संसार की किस महाक्रांति ने—यौवन के मतवाले पारावार के किस उन्मत्त तूफान ने विस्मय की, प्रश्नों की, अवाक् अवसाद की, कौतूहल की उन उलझी हुई ग्रंथियों को खोल दिया । वह सिहरकर चौंक पड़ी । अपनी सस्मित भावनाओं को, भोलेभाले किशोरहृदय को उस सलोनी मूर्ति के प्रेम के दृढ़ भुजपाश में बँधा देखकर वह कंदकित-रोमांचित

तारे

हो उठी। अभी तक वह किसी अभाव की परिभाषा तक न जानती थी, उसके जीवन में सोना-सा बरसा करता था; परंतु अब न-जाने किसने आकर अपने अदृश्य हाथों से उसके रतनारे नेत्रों में, काँपते हुए अश्रुकों की भाषा में, आकर लिख दिया। उसके हृदय की उमड़ी हुई राशि-राशि पूर्णता में न-जाने कहाँ की रिक्तता आकर भर गयी। जीवन की उपत्यका में यह मौन मलिन सूनापन छा गया! रह-रहकर उसे यही प्रतीत होता कि वह कहीं कुछ भूल-सा आयी है। उसकी अंतःनिःसृत चेतना उस मूर्ति को अब कुछ क्षणों तक देखकर ही संतुष्ट न होना चाहती थी। वह चपलता-विस्मय, प्रश्न और कौतूहल, कल्पना की इस मधुपूरित अमराई में बिखर-सं गये थे.....

अब तो वह उस मूर्ति को और भी निकट से देखना चाहती थी—हृदय में प्रवाहित स्नेहधारा के प्रत्येक बिन्दु में यौवनो-ल्लास के समान उस मूर्ति को भर लेना चाहती थी—उद्दाम यौवन की मीठी चंचलता के समान उसे अपने सौंदर्य में समाहित कर लेना चाहती थी। उसके वही नेत्र—जो उस मूर्ति के आगमन की बेला जान पुलकमुग्ध होकर आतुरता, कौतूहल, आकर्षण और विस्मयभरे प्रश्नों को दुहराया करते थे—अब कलित कल्पनाएँ, सुकुमार साधें और प्रणय-उच्छ्वसित मधुर भार भरकर मधुरस की प्यासी यौवन की झिलमिल रश्मियाँ बिखेरा करते। वह अपने लोल लोचनों के मार्ग से उन्हें अपने हृदय-स्पंदन में प्रविष्ट कर लेना चाहती थी—अपने उच्छ्वसित हृदय की अपलक थर-थर पुलकावली में उन्हें भर लेना चाहती थी।

तारे

उसका वश चलता तो वह उन्हें देखती ही रहती। उन्हें देखने के लिए वह पिंजरबद्ध कीरनी की भाँति फड़फड़ाया करती। उसकी आँखों के सामने दिन-रात उन्हीं की मूर्ति नाचा करती, यहाँ तक कि घर का काम करते-करते वह आत्मविस्मृत हो जाती—कल्पना के मधुवन में सो जाती। जागृत में भी उन्हीं के स्वप्न देखा करती। यौवन-संतप्त अधीर हृदय उनका मधु आश्वासन पाने के लिए कातर हो उठता। उसकी सुनहली कल्पनाएँ उनके प्रणय-उच्छ्वासों में भूम-भूमकर, प्यार से भीगकर, अनुराग से अनुरंजित होकर यौवन के हरित मधुवन में खेलने के लिए ललकने लगीं।

इसके बाद वासना की—प्रेम की—उन्माद की किन उद्भ्रांत व्याकुल हिलोरों ने, क्षणिक बेहोशी के किस मंदिर जाल ने, अन्धी जवानी की—दीवाने यौवन की उन्मत्त कर देनेवाली किस महामूर्च्छना ने कैसे उस उस विराट् नगर में उस मूर्ति को खोजने के लिए प्रेरित किया—किस अदृश्य, अज्ञात, अनजान शक्ति ने उसे उनके गतिशील चरणों पर अपने आँधी-से यौवन का, राशि-राशि रूप-माधुरी का, वासनाओं के चंचल उद्वेलन—भावनाओं के पागल अभिसार का मधुर भार डालने के लिए उकसाया और कैसे वह उनकी खोज में एक दिन अखंड आधी रात में अपनी अविवाहित सूनी सेज छोड़कर साहसपूर्वक उस विराट् नगर की सड़कों पर आ खड़ी हुई, उनकी खोज में निकल पड़ी—यह भी उसे याद आया; परन्तु आकाशकुसुम होकर वह मूर्ति उसे न मिली—न मिली। जीवन का वह पहला प्यार किसी जनशून्य सघन कानन के अविजानित कुसुम की भाँति अपने

तारे

ही में मुरझाकर, बिना फूले-फैले और सौरभ की मादकता—पराग की गन्ध छिटकाये ही शून्य में विलीन हो गया। उसके प्रेम की वह नन्ही-सी सरिता उनके अनुराग-सागर तक न पहुँच पायी, मार्ग की विभीषिका में ही बिखर गयी ; विश्व के निर्मम सिकताकणों ने उसे पीकर, सोखकर आत्मसान् कर लिया।

इसके बाद भाग्य की जिस विडम्बना ने—विचारों की, घटनाओं की जिस प्रतिक्रिया ने उसे पाप, कलुष, कालिमा, अशान्ति, प्रवंचना, प्रतारणा और हाहाकार के इस संसार में ला बिठाया—पतन के इस मालती-कुंज में अलसित, उनीचे नयनों की मदभरी शीराजी बहाने के लिए मजबूर किया, उसे वह जानकर भी भूल जाना चाहती थी। उसकी स्मृति के साथ पीड़ा का जो भंभावात आता था, वह उसके सुकुमार हृदय के लिए असह्य था। भग्नता और निराशा के जो विपाद-स्वर उसके हृदय की वीणा के तारों में लिपटे हुए अर्द्धसुप्त अवस्था में करवटें लिया करते थे, वे आज स्मृति की इस उन्मत्त आँधी से हिल उठे और कंपित-भंपित होकर बेगुरे-में बजने लगे। ओस कणों में लदे हुए मँवती-दलों की भाँति उसके नलिन-नेत्र पीड़ा की—टीस की मीठी बौछारों से उलझ-से गये। आह ! अतीत का वह मद-संसार, मूर्च्छना का वह आलिंगन ! कितनी आत्मविस्मृति—सुषुप्ति थी उस जागरण में। वह कल्पना से भी कोमल—सुमनों से भी सुकुमार, पहला प्यार अब कहाँ मिलेगा ! इस जीवन में उसकी कल्पना भी असंभव है। तब नहीं मिला—किसी का सर्वनाश करके—पतन करके, तो अब क्या मिलेगा ! अब तो वह न-जाने किस पथ का पथिक हो गया होगा—किस हृदय में थिरक रहा होगा—

तारे

किसी अनंत आलिंगन में बँधा भूम रहा होगा । और, उसकी स्मृति ? वह तो सुलोचना के हृदय की एक अस्वाभाविक उत्तेजना में परिणत हो गयी । प्रकाश की एक रेखा-सी—सुषमा की एक किरण-सी निविड़ तमावृत्त गगन में भटकी हुई एक तारिका की भाँति उदित होती है । उस समय शीतल समीर न-जाने कितना कुसुम-पराग लेकर उसके अंगराग लगाता है—चन्द्रिका हँसकर सुधा से स्नान कराती है—अनंत अम्बर मेघ की सुनील साड़ी पहनाता है—तारावली हीरक-हार बन जाती है और वह प्रवृत्ति की रंगभूमि पर उतरते-उतरते ही न-जाने कब—कैम—कहाँ लुप्त हो जाती है ; परन्तु आज—आज ऐसा प्रतीत होता है कि वह आँखों में रहकर ही रात काट देगी । आज तो यही ज्ञात होता है कि चारों ओर से मानों अवहेलित होकर—निर्वासित-सी होकर वह उसी के प्राणों में रहने के लिए आयी है और अब इस जीवन के साथ ही जायगी ।

३

“अरे ! बहन सरला, तू यहाँ कहाँ ?”

सुलोचना चौंककर उस सुन्दरी रमणी की ओर देखने लगी । आज एक जमाना बीत गया । यह नाम अतीत की एक करुण कहानी—एक दाहक गाथा-सा हो गया था, जिसे पढ़ते ही हृदय फटने लगता था । आज एक अनजान रमणी के मुँह से यह नाम सुनकर उसकी चेतना का संसार तड़प उठा । वह प्रश्नभरे नयनों से उसकी ओर देखकर अपनी स्मृति के संसार में उसकी छाया-सी ढूँढ़ने लगी । अरे, रानी ! तुम हो ।

“हाँ री सरला, तू यहाँ कहाँ ! दो महीने हुए हमें यहाँ

तिरपन

तारे

आये । उनकी बदली हो गयी है, पहले आगरे में थे । तू मुझे क्यों पहचान पायी होगी ! परंतु मैं तुझे देखते ही पहचान गयी । तू यहाँ कहाँ ? तू तो न-जाने कहाँ.....”

“रानी, न पूछो कुछ ; मुझे बहन कहकर मत पुकारो । मैं तुम्हारे पैरों की धूल.....”

उस भोली रमणी ने आश्चर्यचकित होकर पूछा—क्यों, क्यों ?

“रानी, मैं बड़ी अभागिन हूँ । मेरे शरीर से पाप की—घृणा की—कलुष की लपटें निकल रही हैं । तुम्हें तो मुझे देखकर भी न देखना चाहिए था । रानी, अभी तुम मुझे देखना चाहती हो—मुझसे बात करना चाहती हो—मेरे समीप आना चाहती हो—मुझे अपने समीप रखना चाहती हो ; परंतु, परंतु ..ज्यों ही मैं तुम्हें बता दूँगी कि मैं कौन हूँ—क्या हूँ, त्यों ही तुम्हारी आँखों से घृणा की, व्यंग्य की, अवहेलना की चिनगारियाँ निकलने लगेंगी !”

रानी—“चलो बहन, घर चलें । एक मुद्दत के बाद तो मिली हो । वहीं सब हाल सुनूँगी । लड़कपन में मुझसे तुझसे कितनी पटती थी, क्या भूल गयी ? तुझे शायद याद न होगी, परंतु मुझसे तुझसे तो कभी झगड़ा भी नहीं हुआ ।”

सुलोचना उस संभ्रांत रमणी के भोलेपन पर सिहर उठी । बोली—रानी, मैं तो वेश्या हूँ !

कुछ क्षणों तक तो रमणी अप्रतिभ, अप्रतिहत-सी होकर उसकी ओर देखती रह गयी । फिर प्रेमपूर्वक हाथ पकड़कर बोली—तो क्या हुआ ? मेरे लिए तो तू वही सरला है । चल, मेरे यहाँ ।

सुलोचना ग्लानि की मूर्च्छना से बेहोश-सी होकर बोली—

तारे

“आज तो माफ़ करो, रानी । फिर किसी दिन मिलूँगी ।”

“फिर कब ?”

आत्मग्लानि और रमणी की विशुद्ध सरलता तथा स्नेह-व्यवहार से सुलोचना जली जा रही थी । बेसुध होकर बोली—“जिस दिन बुलाओगी—कहला भेजोगी, उसी दिन हाज़िर हो जाऊँगी ।”

उसे रमणी की सरलता और प्रेम पर बिलकुल संदेह न था । वह सोचती थी कि मुझे इसके साथ देखकर इसके घर के लोग क्या कहेंगे ! यदि वहाँ किसी ने कुछ कह दिया तो.....

वह रमणी चली गयी, परंतु सुलोचना उसकी ओर जब तक वह पार्क के बाहर जाकर गाड़ी में न बैठ गयी—सजल, अपलक दृष्टि से देखती रही ।

“आह ! यह वही रानी है जो लड़कपन में उसके . . . साथ गुड़िया खेला करती थी, कितनी सुखी है यह । संसार का आदर-मान, श्रद्धा, सरलता और संपदा मानों इसके चरणों पर लोटती हैं । पवित्रता की देवी-सी प्रतीत होती है ! उसे वे दिन याद आने लगे जब वह और रानी दोनों साथ ही साथ खेलती, पढ़ती, भूला भूलती, मेंहदी लगाती और गाती थीं । सामने ही तो रानी का आलीशान मकान था । पहलेपहल उसे रानी के यहाँ जाने में कितनी हिचक—कितना संकोच हुआ था, परन्तु कैसे एक दिन रानी स्वयं उसका हाथ पकड़कर बाहर से उसे घर के भीतर ले गयी थी और सहेली की भाँति हिल-मिल गयी थी । रानी उसे कितना प्यार करती थी, यह भी रह-रहकर उसे याद आने लगा । परन्तु वासना की उन उन्मत्त हिलोरों के सामने

रानी का प्यार-दुलार और ममत्व सब न-जाने कहाँ बह गया था ।”

आज रानी को देखकर उसे जीवन की वही सुनहली वेला याद आ गयी । रानी की स्थिति से अपनी स्थिति की तुलना करके वह काँप उठी । रानी ने यदि उससे घृणा की होती, उसे धिक्कारा होता, प्रताड़ित और अपमानित किया होता—तो उसे इतनी विक्षिप्त यंत्रणा न होती । परन्तु रानी के इस स्नेहपुलक आश्वासन ने उसे मार डाला । रह-रहकर उसे अपने जीवन से घृणा हो जाती । रह-रहकर उसकी यह इच्छा—प्रेरणा होती कि वह रानी की दृष्टि से दूर—सुदूर जाकर ओझल हो जाय । रानी की सहानुभूति से भीगी हुई मीठी वाणी ने काँटे की भाँति उसके कलेजे को क्षत-विक्षत कर दिया । वह घर चली आयी, परन्तु किसी काम में अपना मन न लगा सकी ।

रह-रहकर स्नेहमयी रानी की मूर्तिमयी सुध आ-आकर उसे आन्दोलित कर देती ; हृदय में तूफान—भावों की आँधी और आँखों में, अधिक नहीं, केवल छोटी-सी अश्रुराशि उद्बलित कर जाती ।

×

×

×

इसके तीसरे दिन जब रानी की गाड़ी उसे लेने के लिए आयी, तो वह बड़े असमंजस में पड़ी कि जाय या न जाय । उसे रानी का उतना अधिक ध्यान न था । उसके सामने वह अपना हृदय खोलकर रख सकती थी । इसके अतिरिक्त उसने जिन ललक-भरे प्रेमपूरित शब्दों में अपने अन्तस्तल का प्यार बहाया था, वे रह-रहकर अब भी उसके भयभीत संतप्त

तारे

हृदय को आश्वासित कर देते थे। परंतु उसके घरवाले क्या समझेंगे ! एक वेश्या का आना-जाना उन्हें कैसा लगेगा ?—क्या अच्छा लगेगा ? नहीं, वे समाज में सम्मानित और माननीय हैं। वे इसे न सह सकेंगे। उसके पीछे यदि कहीं उसकी प्यारी सखी को घरवालों की प्रताड़ना का पात्र बनना पड़ा—तो ? उसने निश्चय कर लिया कि वह एक पत्र लिखेगी, जिसमें उसके प्रेम-कृपा-स्नेह-भाव के लिए धन्यवाद देगी और कहेगी कि तुम्हारी इतनी प्रीति-सुकोमल अनुकम्पा ही मेरे लिए बहुत है, यही मेरे जीवन को शीतल—कृतार्थ कर देगी। इसी में मुझे सुख है। मैं तो जन्म से ही अभागिन हूँ। मुझे बुलाकर अपना घर क्यों अपवित्र करती हो ?

परंतु न-जाने क्यों दुर्बल-हृदया सुलोचना उस ममता से भरे हुए अनुरोध को न टाल सकी। सब आभूषण उतारकर, शृंगाररहित हो केवल एक शुभ्र अमल श्वेत साड़ी पहनकर गाड़ी पर बैठ गयी। गाड़ी जाकर एक बड़े बँगले के सामने खड़ी हो गयी। दरबान ने आकर अदब से गाड़ी का दरवाजा खोला और वह उतरकर भीतर चली आयी। दालान में खड़ी हुई एक सुन्दरी मानिनी रमणी ने, जिसकी एक आँख से भोलेपन का अन्तःनिःसृत प्रवाह भर रहा था और दूसरी से मदिरा की अजस्र धारा उमड़ कर विश्व के अणु-अणु को उन्माद से भर रही थी, उसे हृदय से लगाकर बाहुबल्लरियों में बाँध लिया।

तब से सुलोचना न-जाने कितने बार रानी के यहाँ आयी-गयी।

तारे

धीरे-धीरे उसका संकोच भी धुलता गया। उसकी धारणा गलत निकली। रानी को छोड़कर घर में कोई अन्य स्त्री नहीं थी। रानी के पतिदेव थे और उसका एक देवर था। रानी के बच्चे थे, और बाकी सब नोकर-चाकर थे। इसलिए रानी पूर्णरूप से स्वतंत्र थी। उसकी जब इच्छा होती, सुलोचना के यहाँ गाड़ी भेज देती और सुलोचना भी सब काम छोड़कर रानी के यहाँ जाने के लिए मचल पड़ती। अतीत के वे स्वर्ण-रहस्य के प्रभात स्वप्नों की रंगीन जीवन-संध्या में एक बार फिर सजीव और साकार हो उठे।

सुलोचना का हृदय आजकल जिस भावना के ज्वार से आन्दोलित रहता, वह उसके अणु-अणु में मूर्त होकर समायी हुई थी। उसकी उन्हीं आँखों से—जिनसे रूप, यौवन और लावण्य का गर्व टपक-टपककर न-जाने कितनों को मदोन्मत्त करता था, परन्तु अब जिनमें एक अस्पष्ट वेदना एवं मूक ग्लानि का भीना-भीना स्रोत-सा रसता रहता था—विरक्ति प्रवृत्ति की ओट से भाँक-भाँककर न-जाने किसका आवाहन किया करती थी, मानों भरोखे की ओट से सुधांशु की किरणें भाँक रही हों। सुलोचना मदिरा के व्यवसाय को, यौवन के क्रय-विक्रय को, सारे हाव-भावों को, सारी कटाक्ष-कलाओं को भूल-सी चली थी। इस विस्मरण में उसे एक प्रकार का सुख मिलता था, जो रानी के सामीप्य से और भी आलोकित एवं उद्भासित हो जाता था।

×

×

×

शरत् के धवल-नक्षत्र नील गगन से ज्योत्स्ना की न-जाने कितनी राशि-राशि पुलकावली बरस रही थी। विश्व के

तारे

प्राणों में यौवन की अल्हड़ता और मस्ती के साथ उफनाती हुई मदिरा के प्राण भी काँप रहे थे। सुलोचना अपने सुसज्जित किंतु अस्त-व्यस्त कमरे में खड़ी आइने के सामने अपना रूप निहार रही थी ; शायद अपने मंदिर कपोलों पर पड़े हुए अतीत के अमिट चुम्बन-आघातों के रस-विरहित दागों को भी गिन रही थी। आज उसके मानस की कुमुद-बालाएँ अपने बड़े-बड़े नेत्र खोलकर न-जाने आकाश की ओर किसे निहार रही थीं !

सहसा सुलोचना ने एक मदभरी अँगड़ाई लेकर, जिसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति का सुन्दर सम्मेलन हो रहा था, आइने की ओर से अपना मुँह फेर लिया। इतने में उसकी दासी ने आकर कहा—“एक बहुत बड़े साहब आये हैं जो आपसे मिलना चाहते हैं ...।”

सुलोचना ने आजकल मिलना-जुलना बिलकुल बन्द कर रक्खा था। शायद महीनों से वह किसी से नहीं मिली थी। एक प्रकार की अविजानित लज्जा और ग्लानि-सी उसे होती थी और एक प्रकार का अस्पष्ट भय भी। उसने दासियों को आज्ञा दे रखी थी कि कोई भी बिना पूछे मुझसे मिलने न आने पावे। इसलिए उसने दासी से कहा—जाकर कह दे, तबियत ठीक नहीं है ; मिल नहीं सकतीं।

दासी चली गयी, परंतु उलटे पाँवों लौटकर बोली—“सरकार, वह कहते हैं कि मैं आपको बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। शायद कोई जरूरी काम है।”

सुलोचना बड़े सोच-संकोच में पड़ गयी। कौन हो सकता है ! उसे अच्छी तरह तो बहुत-से लोग जानते हैं, इस शहर

मैं न-जाने कितने हूँ ! अन्त में कुछ सोचकर उसने भीतर बुलवा लिया । एक कुर्सी खींचकर स्वयं उस पर बैठ गयी ।

आनेवाला एक नवयुवक था । अवस्था ३४-३५ वर्ष की थी । बढ़िया सिल्क का कुर्ता, बंगाली धोती, रिस्टवाच. जेब में कीमती फ्राउंटेन-पेन, पंप-शू. न-जाने क्या-क्या था । आते ही उसने सौ रुपये का नोट फेंक दिया और कहा—मैंने आपको जो कष्ट दिया है, उसके लिए माफी चाहता हूँ ।

मुलोचना की बड़ी-बड़ी मदभरी आँखें उसकी सौंदर्य-राशि में उलझ गयीं ।

युवक ने कहा—आपने शायद पहले मुझे कभी नहीं देखा, परंतु मैंने आपको अपने मकान पर कई बार देखा है । मेरी स्त्री से आपका जो परिचय है, उसे भी मैं जानता हूँ । आप शायद नहीं जानतीं, मैं रानी का पति हूँ ।

मुलोचना काँप उठी. परंतु जितना यह सोचकर कि रानी का पति उसके यहाँ रात के दस बजे न-जाने किस हाला के मदोन्मत्त क्रोड़ में झूमते हुए आया है, उससे अधिक कुछ और सोचकर—अपने हृदय के किसी कोने में उस युवक की धुंधली-सी आकृति देखकर । मुलोचना ने एक विचित्र अव्यक्त भावना से सिहरकर कहा—आपने कैसे कष्ट किया ? अभी कल ही तो मैं आपके यहाँ गयी थी ।

“आप गयी थीं रानी के पास । उससे मुझसे क्या मतलब ! मैं आया हूँ आपके—अपने हृदय की रानी के पास । आपकी सुंदरता ने न-जाने कितनों को विलीन किया है, वायल कर दिया है ; मैं भी उन्हीं आहतों में एक हूँ । आपसे दवा लेने आया हूँ ।”—ऐसा कहते-कहते एक उन्मत्त लालसा से

उसके नेत्र अधीर हो गये और भूम-भूमकर प्रणय-भिन्ना माँगने लगे ।

मुलोचना कुछ न बोली । इस समय वह किसी दूसरी लहर में बही जा रही थी । यौवन की उदाम प्रवृत्ति की रंग-भूमि में खड़ी हुई मुलोचना सिहर उठी । विष्मृति के तिमिराच्छन्न विजन प्रांत में स्मृतियों का जो अनंत आलोक—शायद कभी न मिटनेवाला प्रकाश—सहसा छा गया था. उसमें मुलोचना ने एक बार फिर उस युवक की ओर ध्यान से देखा । वही है—हाँ, वही तो है । परंतु इतना अंतर ! कहाँ वह देवदुर्लभ मौंदर्य—उसका चिरसहचर एवं उन्मत्त कर देनेवाला भोलापन—देवत्व—आकर्षण, और कहाँ आज यह वासना का पागलपन ! उस दिन अखंड आधी रात की बेहोश घड़ियों में—उन्मत्त बेला में जिसके लिए घर-द्वार छोड़ा, परिवार छोड़ा और कलंक का आश्रय लिया, वह उसे उस समय तो न मिला । परंतु मिला कब ?—जब उसका सर्वस्व लुट चुका है ; जब उसका सारा ऐश्वर्य, सारा वैभव, सब कुछ वासना की निर्ममता पर चढ़ चुका है । कलिका को अपनाने के लिए वह देवकुमार—जिसके आलिंगन के लिए वह विश्व के उपवन में उत्पन्न हुई थी—आज स्वयं उपवन में आया है, परंतु कब ? जब सारा परिमल, अधरों का सारा रस, पंखड़ियों का सारा सौरभ एवं मद वासना-लोलुप कलुपित भ्रमरों द्वारा लूटा जा चुका है ।

वसंत के अवशेषों पर उनका यह आना कितना दाहक है, यह मुलोचना ही जानती थी । उसका हृदय फटने लगा । इससे तो न आना ही अच्छा था । जब प्रेम की—कौमार्य की

तारे

चिता जलकर राख हो गयी, उसमें से निकली हुई रक्ताभ अग्नि-शिखाएँ जाकर वासना की—पतन की—ताप की—अंबरविहारिणी लालिमा में समाहित हो गयीं, तब वह उसे अपनाने आये हैं और वह भी भोग-विलास की, वासनापूर्ति की, चुम्बन-आलिंगन की गुड़िया समझकर !! और आये हैं उसकी स्नेहभगिनी प्यारी बहन और सखी के दुर्भाग्य—अभाग्य बनकर न-जाने क्यों सुलोचना के नेत्रों से तम अश्रुकण परिमुक्त होकर टपटप गिरने लगे । उसकी प्यारी सखी, बहन ‘रानी’ का प्रीतिसुकोमल मधु-मुस्कान-आलोड़ित मुखमंडल नेत्रों में मँडराने लगा । एक असह्य यंत्रणा से वह तिलभने लगी, मानों उसके अंग-अंग में व्रण फूट निकले हों ।

“जिस दिन मैंने आपको पहलेपहल देखा, उसी दिन से आपने मेरा दिल छीन लिया । एक-से-एक खूबमूरत स्त्रियाँ मैंने देखी है, परंतु आपकी खूबमूरती तो बड़ी ही गजब की है । मैंने कम-से-कम आप-जैसी खूबमूरत ‘जान’ नहीं देखी । आपको मैं कितना चाहता हूँ, यह कैसे बतलाऊँ”

युवक उत्साह के साथ कहता चला गया । वासना की हिलोरां—वल्लरियों से प्रकंपित उसका हृदय सुलोचना को अपने बाहुपाश में खींच लेने को अधीर हो रहा था । उसकी लोलुप आँखों से चिटखती हुई वासना की चिनगारियाँ सुलोचना के आँसुओं को न देख सकीं । आखिर वह वेश्या ही तो थी ।

सहसा युवक आगे बढ़कर सुलोचना के पास आ खड़ा हुआ और अपने रक्तस्पंदन-आलोड़ित हाथों से उसका हाथ पकड़कर बोला—“उफ ! कितनी प्यारी रात है ।”

तारे

सुलोचना ने चौंककर अपना हाथ छुड़ा लिया और अपना मलीन मुख ऊपर उठाकर रुखाई के साथ कहा--“आप फिर कभी आइएगा । आज मैं आपकी सेवा नहीं कर सकती ।”

“क्यों, आज क्या है ?”

“आज मेरा जी अच्छा नहीं है ।”

“अच्छा, तो कुछ देर पास ही बैठिए ।”

“जी नहीं--माफ़ कीजिए । मेरी तबियत बिल्कुल ठीक नहीं है ।”—ऐसा कहकर सुलोचना ने वह नोट लौटाते हुए कहा--“ले जाइए इसे ।”

“क्यों !”

“आज मैंने आपकी सेवा नहीं की, इसलिए आप मुझे क्यों दे रहे हैं ?”

“अरे, यह नोट क्या है, ऐमे हजारों न-जाने कितने नोट आपकी इस सुंदरता पर निछावर किये जा सकते हैं तो फिर जाऊँ ?”

कितनी आग थी—कितनी प्यास थी—कितनी हविस थी इन शब्दों में । सुलोचना घृणा से काँप उठी, स्मृतियों की दाह में सुलगने लगी । बोली--“हाँ, आप जा सकते हैं ।”

युवक चला गया । सुलोचना आँसू-भरे सकरुण मुख से उसकी ओर देखती रही ।

x

x

x

उसी रात को सुलोचना ने वह शहर छोड़ दिया । साथ में कुछ नहीं था । केवल एक साड़ी थी जो वह पहनें थी, और सीने से चिपटी हुई जाकेट में था वही सौ रुपये का नोट । शायद यही उसके विनाश का मूल्य था ।

तो आखिर यह क्यों होता है ?

जिस समय कोई किसी के लिए व्याकुल हो उठता है—उसे अपनाने के लिए, उसे पाने के लिए अधीर हो जाता है, उस समय वह उसे क्यों नहीं मिल जाता, उसके सिहरभरे स्पंदनशील उच्छ्वसित हृदय से आकर क्यों नहीं लग जाता—क्यों नहीं आकर उसे, उसके मधुरस से उमड़े हुए अधरों का चुम्बन करता—विचंचित होता ? जिस समय कोई किसी की स्मृति में रोने लगता है—प्राण-पंखड़ियों को भिगोने लगता है, उस समय क्यों नहीं वह आकर अपने करुण कर्णों से आँगू पोंछने लगता?

और, जब कोई किसी को एक तरह से भूल-सा जाता है—केवल उसकी स्मृति को प्यार से संचित करने लगता है—उन मधुर आवेग से निखरी हुई टीसों में ही सुख की अनुभूति का सृजन कर बैठता है—उस समय वह क्यों आकर जीवन में हाहाकार मचा जाता है ? न-जाने क्यों, और कब से, कितने युगों से प्रकृति मनुष्य की अंतःनिःसृत प्रवृत्ति का—भावना के अणु-अणु, एक-एक परमाणु में सोती हुई—रोती हुई प्यास का विद्रोह करती आयी है, तब इस मधुरिमा का विनाश करने में उसे कौन-सा सुख मिलता है !

और, यह सब कब तक होता रहेगा—इसे कौन जान पाया है ?



आकाश-दीप

आकाश-दीप

१

यमुना के प्रशान्त सुनील तट पर खड़ी हुई इन्दिरा आकाश-दीप जलाने जा रही थी ।

पूर्णिमा की रात थी । राकेश ने मानों समस्त अवनीतल को धो दिया था । बकुल, कदम्ब, रजनीगन्धा और हरसिंगार की सुगन्ध से सना समीर आ-आकर हृदय के सुकुमार वृन्तों को उकसा रहा था । यमुना के पुलिन-प्रान्त पर चारों ओर निस्तब्धता छायी हुई थी । आकाश बिलकुल निर्मल था । इधर-उधर दो-चार तारे टिमटिमा रहे थे ।

इन्दिरा के हृदय में भी पूर्व-स्मृतियाँ इन्हीं तारावलियों के

सरसठ

तारे

समान धीरे-धीरे जागृत हो चलीं । उसके स्मृति-मंदिर में सोयी हुई वेदना, श्रान्ता मुग्धा की भाँति, धीरे-धीरे अँगड़ाइयाँ लेती हुई उठने लगी । तड़पती हुई स्वप्रिल अनुभूतियों का संसार उसके नेत्रों के सामने घूमने लगा । आज एक वर्ष हो गया । रह-रहकर इन्दिरा के सम्मुख अतीत के व्यथापूर्ण संस्मरण जुगनुओं की तरह जगमग-जगमग करने लगे । आज ही के दिन, इसी समय, कंपित ओष्ठ-प्रदेश में एक अस्फुट ध्वनि निकलकर रजनी-पति की स्निग्ध उज्ज्वल चंद्रिका में बिखर गयी थी । इसी समय एक लुभते हुए जीवन-प्रदीप की प्रकाश-रेखा यमुना की श्यामता में विलीन हो गयी थी । जीवन के वे करुण और हृदय को चीर देनेवाले क्षण आ-आकर स्मृति-नाट्य-मंच पर थिरकने लगे ।

इसी प्रकार की आत्मसंवेदना में डूबी हुई इन्दिरा ने दीपक में घी भरा, वत्ती जलायी और डोर को ढीला करते हुए काँच की सुन्दर कंदील को नीचा किया । उस पर दीपक रखकर उसने रस्सी फिर कड़ी की । दीपक ऊपर जाकर वायु की मृदुल लहरियों से क्रीड़ा करने लगा । इन्दिरा थोड़ी देर तक तड़पती हुई दृष्टि से उस दीपक की ओर देखती रही । सहसा उसकी दृष्टि ऊपर को उठ गयी और उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे नील घन की ओट से झाँकता हुआ वह मुस्करा रहा है ।

इन्दिरा इसके बाद यमुना के नील सलिल की ओर व्याकुल दृष्टि डालकर चली आयी । दीपक अब भी उसी भाँति वायु की लहरियों से खेल रहा था और उसका प्रकंपित प्रतिबिम्ब यमुना की नीलिमा पर पड़ रहा था । नन्हीं-नन्हीं लहरें हहर-हहर कर दीपक के प्रतिबिम्ब को हृदय से लगा लेने के

नारे

लिए उमड़ी पड़ती थीं और एक स्नेह-सिक्त लोरी का संगीत सुनाकर उसे अपने स्नेहांचल में छिपा लेना चाहती थीं ।

२

इन्दिरा धनी माता-पिता की इकलौती कन्या थी । लाड़-प्यार में पली थी । ऐश्वर्य, मद एवं विलास के उन्मत्त भोकों में बहा करती । उसके सौन्दर्य-पुष्प को यौवन के मधुमय तुहिन-बिन्दु आच्छादित किये रहते । उच्छल यौवन की लालिमा उसके रूप-मद के साथ अठगेलियाँ किया करती । यौवन की आँधी आ-आकर उसके सौन्दर्य-क्षितिज को भकभोर देती । वह एक गर्वीली और मानिनी रमणी थी ।

कैलाश इन्दिरा के पिता के यहाँ काम करनेवाले एक मुनीम का लड़का था । बचपन में वह इतना सुन्दर और मोहक था कि वह जिस ओर निकल जाता, उसी ओर लोगों की आँखें उस पर अड़ जातीं । इन्दिरा की मा उसे बहुत प्यार करती थी और इसी नाते वह उसके यहाँ दिन-दिन भर खेला करता ।

धीरे-धीरे दोनों बड़े हो चले । यौवन की नवीन प्रवेगशील धाराएँ सुप्त चेतना को जागृत कर रही थीं । कैलाश अब उतनी निर्भीकता और स्वच्छन्दता के साथ भीतर नहीं जाता था, और इन्दिरा भी उस ललक और उल्लास के साथ कैलाश को नहीं पुकारती थी ।

कैलाश इन्दिरा को प्यार करता था । इन्दिरा को देखकर, उससे बातचीत करके उसे जो सुख और शान्ति मिलती, उसकी अनुभूति करके उसे बड़ा आनन्द होता । उसके हृदय

तारे

में माधुर्य की अजस्र धारा बहने लगती । इन्दिरा से उसे यह कहने का साहस न होता कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ—तुमसे प्रेम करता हूँ । इन्दिरा यह जानती थी कि कैलाश मुझे चाहता है ; परन्तु उसे उसके प्रति दया आती, सहानुभूति होती और कभी-कभी हँसी भी आती । किंतु कैलाश के प्रेम में न जाने कौन-सा उन्माद था, न जाने कौन-सी लालसा थी, कौन-सी कामना थी कि उसे नैराश्य के भूलें पर भूलने में ही जीवन का सुख मिलता ।

इन्दिरा का व्याह हुआ राय हरिप्रसाद के साथ । पहले ही दिन जब इन्दिरा ने हरिप्रसाद का सुन्दर और तेजपूर्ण मुख देखा, वह कैलाश को विलकुल भूल गयी । इन्दिरा को बिदा कराकर जब हरिप्रसाद लिये जा रहे थे, तो अपने सामने सुख-स्वप्नों से आच्छादित सुन्दर भविष्य देख रहे थे । उस समय कैलाश को ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई दीपक, जो उसके हृदय-मंदिर में जल रहा था और जिसका प्रकाश छन-छन कर उसके नेत्रों में आ रहा था, एकाएक बुझ गया हो ; कोई स्वर-लहरी, जो अब तक उसके कानों में सुधाधार-सी बहा रही थी, एकाएक वायु में विलीन हो गयी हो ; कोई सुन्दर चित्र, जिसमें वह विमुग्ध नेत्रों से देख रहा हो और आत्म-विस्मृति में तल्लीन हो रहा हो, सहसा सामने से हट गया हो ; अभी तक एक गुलाबी निद्रा के क्रोड़ में भूमते हुए वह जिन सुख-स्वप्नों को देख रहा था, उनका अंत हो गया हो ।

दो महीने श्वसुर-गृह में रहकर जब इन्दिरा लौट आयी, तब कैलाश एक दिन उसके घर गया । थोड़ी देर इन्दिरा की

तारे

मा सं बातचीत करने के बाद वह इन्दिरा के कमरे में गया । इन्दिरा कुर्सी पर बैठी हुई किसी के चित्र को, जो टेबिल पर रक्खा हुआ था, देख रही थी और मधु-मूर्च्छा में निमग्न थी । वह इतनी तन्मय थी कि उसे कैलाश के पैरों की आहट तक न मालूम हुई । सहसा कैलाश इन्दिरा के पास जाकर खड़ा हो गया । इन्दिरा चौंक पड़ी, बोली—

“आओ कैलाश—कैसे चले आये आज !”

कैलाश—“कुछ नहीं, तुम्हें देखने चला आया ।”

इन्दिरा—“अच्छे हो !”

कैलाश—“हाँ, अच्छा ही हूँ ।”

कुछ देर तक इधर-उधर की बातचीत करने के बाद कैलाश ने कहा—“इन्दिरा ! एक प्रार्थना है । यदि स्वीकार करो तो कहूँ ।”

इन्दिरा (हँसकर)—“मुझमें आज तुम यह कैसा शिष्टाचार कर रहे हो—कहो न ।”

कैलाश—“अपना एक फोटो मुझे दे दो ।”

इन्दिरा (हँसकर)—“क्या करोगे मेरे फोटो का ! मुझमें कोई खास बात तो है नहीं ।”

कैलाश—“इन बातों को पूछ कर क्या करोगी, मुझे एक फोटो दे दो ।”

इन्दिरा—“अच्छा, कभी दे दूँगी । संदूक में ढूँढ़ूँगी ।”

कैलाश—“अपना नाम भी उसके नीचे लिख देना !”

इन्दिरा—“आखिर तुम उसे करोगे क्या ?”

कैलाश के मुँह तक तो आया कि कह दे—“उसे अपने हृदय-पट में जड़ाऊँगा !” परन्तु बोला—“इसे तुम न समझोगी ।”

तारे

इन्दिरा सब समझ गयी । बोली—“अच्छा ले लेना ।”
इसके बाद कैलाश इन्दिरा से थोड़ी देर तक इधर-उधर की
बातें करने के उपरान्त चला आया ।

३

कैलाश का जीवन एक विडम्बना-सा हो गया । इन्दिरा
वर्ष में आठ महीने श्वसुर-गृह में रहती । जब यहाँ रहती,
तब कैलाश को एक-दो बार दर्शन मिल जाते थे । कैलाश के
माता-पिता बार-बार व्याह के लिए कहते, परन्तु वह न करता
था । न जाने कौन-सा जीवन-पथ उसने निश्चित किया था ।
इस विदग्धता में उसे अपूर्व आनन्द आ रहा था ।

उन्हीं दिनों उसने सुना कि राय हरिप्रसाद आनेवाले हैं ।
इन्दिरा भी यही थी । इन्दिरा के घर में हलचल-सी मच
गयी । व्याह के बाद दामाद पहलेपहल समुराल आ रहा है ।
सास-समुर के आनन्द और उल्लास का क्या पूछना । राय
हरिप्रसाद के स्वागत के लिए धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं ।
संयोगवश रायसाहब के आने के एक घंटे पहले इन्दिरा के
पिता को जोरों से बुखार चढ़ आया । इन्दिरा की माता ने
कैलाश को बुला भेजा । कैलाश के पहुँचने पर कहा—
“बेटा ! उन्हें बुखार है, हरिप्रसाद को स्टेशन से लिवा
लाओ ।”

कैलाश मोटर लेकर चला गया और राय हरिप्रसाद को
सम्मान-पूर्वक ले आया ।

हरिप्रसाद कैलाश से बातचीत करके उसकी सरलता, हृदय
की विशुद्धता और विचारों की गम्भीरता पर मुग्ध हो गये ।

बहत्तर

तारे

वह उसकी ओर आकर्षित-से होने लगे । बोले—“जब तक मैं यहाँ रहूँ, रोज़ कृपा करते रहिएगा ।”

राय हरिप्रसाद आठ दिन रहे । कैलाश रोज़ उनके पास जाया करता था । रायसाहब कविताओं के बड़े प्रेमी थे । जब कैलाश ने उन्हें अपनी रचनाएँ सुनायीं, जिन्हें वह कभी-कभी लिखा करता था, तो वे उसकी प्रतिभा और भावुकता पर मुग्ध हो गये ।

केवल आठ दिन में कैलाश ने उनके हृदय में स्थान कर लिया । जब वे चलने लगे तो कैलाश के पिता से कहकर उसे भी अपने साथ लेते गये ।

रायसाहब के यहाँ रहकर कैलाश इन्दिरा के बहुत समीप हो गया । अपने आराध्य को अपने समीप देखकर उसके हृदय को बड़ी शान्ति होती । उसके उजड़े हुए हृदयोद्यान के द्रुमदलों के कोमल किशलयों पर हरीतिमा-सी बरस गई । रायसाहब उसे अपना मित्र समझते थे । एक प्रकार से वह उनका प्राइवेट सैक्रेटरी-सा हो गया ।

रायसाहब कैलाश को बहुत प्यार करते थे । उसके उदासीन एवं अर्ध-वित्तिप्त जीवन को देखकर कभी-कभी उन्हें खेद होता । वह उसकी उदासीनता और विषादात्मक वृत्ति का कारण पूछते, परन्तु कैलाश एक सूखी हँसी हँस कर टाल देता ।

इसी प्रकार विषादमय अतृप्ति की व्यथा-सम्मोहन-रागिनी गाते हुए उसके दिन कट रहे थे ।

गर्मियों के दिन थे । एक दिन रायसाहब की इच्छा यमुना

तिहत्तर

तारे

में जल-विहार करने की हुई । इन्दिरा उन दिनों वहीं थी । उन्होंने यह बात उससे कही, वह भी तैयार हो गयी ।

संध्या का समय था । यमुना के तट पर चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था । उसकी प्रशान्त नीलिमा अन्तरिक्ष में गोधूलि की लालिमा का आलिंगन कर रही थी । पूर्णिमा का दिन था, इसीलिए थोड़ी देर में क्षितिज में सुप्त राकापति का जागरण होने लगा । दुग्धफेनिल ज्योत्स्ना ने मुनील गगन को परिच्छन्न कर लिया ।

रायसाहब और इन्दिरा एक नाव पर बैठ गये । उन्होंने पतवार ले लिया । धीरे-धीरे वह डोंगी यमुना के वक्षःस्थल पर थिरकने लगी । इन्दिरा मुग्ध नेत्रों से प्रियतम का नाव खेना देख रही थी । उसका हृदय भी डोंगी की भाँति मचल रहा था । नाव धीरे-धीरे उस पार बढ़ने लगी ।

उसी समय कैलाश भी स्नान करने आया था । परन्तु जब उसने घाट पर रायसाहब और इन्दिरा को जल-विहार करते देखा, तब दूसरे घाट की ओर चला गया । नहा-धोकर, कपड़े पहनकर, वह वहीं पड़ी हुई एक शिला पर बैठ गया और वेसुध दृष्टि से उस छोटी-सी नौका की ओर देखने लगा, जो यमुना के वक्ष पर मृदुगति से नाच रही थी । तरह-तरह के विचार और भावनाएँ उसके हृदय को आन्दोलित कर रही थीं । जिस समय उसके हृदय के सेवती-दलों को वे कल्पनाएँ छू लेतीं, उस समय वे सिहर कर बिखर जाते । वह एक मनुहार-भरी दृष्टि से उस नाव की ओर देख रहा था ।

ऐं ! यह क्या ! उसे एक चीख सुनाई दी । ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई किसी को पुकार रहा है । थोड़ी देर में स्पष्ट

तारे

सुनायी दिया, इन्दिरा चिल्ला रही है। कैलाश दौड़ पड़ा। केवल दो ही मिनट में वह उस घाट पर पहुँच गया। एक अविज्ञानित आशंका से उसका हृदय काँप रहा था। देखा—किनारे पर इन्दिरा मर्माहत खड़ी है। डोंगी अब भी उसी प्रकार यमुना के हृदय पर मचल रही है और कोई सजीव पदार्थ लहरों के साथ डूब-उतरा रहा है।

कैलाश सब समझ गया। सोचने का समय न था। तुरन्त कूद पड़ा और यमुना के जल को काटता हुआ रायसाहब की ओर बढ़ा। किनारे से कोई बीस हाथ की दूरी पर रायसाहब जीवनमृत्यु के भूले में भूल रहे थे। भीम वेग से जाकर कैलाश ने रायसाहब के अर्धमूर्च्छित शरीर को उठा लिया, और एक हाथ और पैरों से तैरता हुआ वह किनारे की ओर चला। दोनों हाथों से उठाकर उसने रायसाहब के शरीर को ठीक किनारे की ओर फेंका और वह पंकिल जलभूमि पर गिरे। परन्तु कैलाश को ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे वह पीछे लौटना चाहता है, पर लौट नहीं पाता। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को खींचता है, उसी प्रकार कोई वस्तु उसे खींच रही थी और जकड़ रही थी। जितना ही वह किनारे की ओर बढ़ने की चेष्टा करता, उतना ही वह जकड़ता जा रहा था।

एक ओर इन्दिरा रायसाहब के मुरझाये हुए मुख को देख रही थी और फिर रह-रहकर कैलाश को ओर देखने लगती कि अब आये, अब आये। उधर कैलाश अपने भाग्य के साथ लड़-भगड़ रहा था। कोई पन्द्रह-बीस मिनट बीत गये। इन्दिरा ने पुकारा—कैलाश क्या कर रहे हो ! आओ जल्दी !!

उसी समय सहसा विनोदशीला रजनी ने प्रियतम चन्द्र को

तारे

अपने अवगुंठन में छिपा लिया। इन्दिरा को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कैलाश यमुना में नहीं है। उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। आँखें मीज डालीं, फिर भी कुछ दिखाई न दिया। सहसा एक अविज्ञानित आशंका से आकुल होकर उसका हृदय दुगने वेग में स्पंदित होने लगा। विजली के समान एक ज्योति ने मानों उसके हृदय में घुसकर कहा—“कैलाश अब कहाँ !” उसका दाहना नेत्र जोर से फड़कने लगा। उसने विह्वल कंठ से लगातार कैलाश-कैलाश पुकारा, परन्तु उत्तर में जैसे यमुना की रजत-रंजित नीलिमा में नियति का नीरव अट्टहास सुनायी दिया। सरिता-तट के उस विजन प्रान्त में उसका कंपित स्वर शून्य में विलीन होकर रह गया। कौन जाने, कैलाश ने सुना या नहीं। न जाने क्यों इन्दिरा के तरल नेत्रों की कोरों में आँसू भर आये। एक संकुचित मोह ने उसके हृदय के सुकुमार स्थलों को ढूँढ़कर आर्द्र कर दिया। उसका हृदय वरम पड़ा।

रायसाहब को लेकर इन्दिरा घर चली आयी।

५

इन्दिरा ने यमुना के प्रशान्त तट पर एक समाधि बनवा दी है। प्रति पूर्णिमा को आकाश-दीप जलाकर वह विकसित करुणार्द्र नेत्रों से अनन्त अम्बर की ओर देख लिया करती है।

जिस समय ज्योत्स्ना के दुग्धफेनिल मंडल पर थिरकता हुआ आकाश-दीप, कैलाश के जीवन की करुण कहानी, रात्रि-समीरण की कोमल कान्त हिलोरों को सुनाया करता और उसका प्रकाश धवल-वसना सुन्दरी के समान विषाद-

छिहत्तर

पूर्वक मुस्कराती हुई समाधि को आलोकित किया करता, उस समय कैलाश की मधुर पीड़ाजनक स्मृतियाँ भी आ-आकर इन्दिरा के हृदयाच्छादित अवसाद को छेड़ने लगतीं। अक्सर ऐसा होता कि रात को नींद उचट जाने पर इन्दिरा अपनी छत पर आकर खड़ी हो जाती। जब आकाश-दीप की ज्योति-शिखा वायु की मृदुल थपकियों से स्पंदित हो जाती, तब इन्दिरा का हृदय भी भावों के मन्द प्रवाह, कल्पनाओं की मृदु लहरियों और स्मृतियों की मादक सिसकियों के साथ खेलने लगता।

कभी-कभी तो इन्दिरा उस दीपक के देखने में इतनी तन्मय, इतनी तल्लीन, इतनी आत्मविस्मृत हो जाती कि प्रभाक्षीण चन्द्रदेव मधुमाम की भाँति बिखरी हुई अपनी धूमिल चाँदनी समेटने लगते आर दीपक की कंपित अरुणिमा, उसके अक्षत अनन्त मौभाग्य-सिन्दूर की प्रतिकृति-सी प्रतीत हो रही उषा की लालिमा में समाहित होकर, जीवन-प्रभात का रूप धारण कर लेती।



मंगल-प्रभात

मंगल-प्रभात

आह.....

व्यथित चकई की अधीर, प्यासी और नैश जागरण से उमंगी हुई आँखों से पूछिए—प्रभात की नवीन सुनहली किरणों में कितना सुख, कितना प्रकाश, कितना उन्माद, कितना मद, कितना जीवन है जो वह इस मधुवेला के आने की बेला जानकर अपने उदास शृंगार को, अस्तव्यस्त यौवन को उल्लास के अंचल में छिपा लेती है।

दूर—सुदूर देश से अपने प्रियतम के हर्ष-विह्वल हाथों से लिखे गये आगमन-पत्र को पाकर उन्मत्त हो जानेवाली—पागल की भाँति भूम उठनेवाली किसी सुकुमार बालिका

इक्यासी

तारे

की अर्धमूर्च्छित, कुछ-कुछ बेहोश चेतना से पूछिए—जीवन में कितना आलोक है, कितना विलास है, कितना प्रमोद है, कितनी मधुमय मिठास है, हर्षोत्फुल्ल अधरों पर कितनी मुस्कान है—सौंदर्य-सुपमा से लिपटे हुए यौवन के अरुण अंचल में कितना कंपन है, कितनी राशि-राशि पुलकावली है ! साथ ही यह भी पूछिए कि इस प्रतीक्षा में कितनी अधीरता है, कितनी मादकता है, कितना पागलपन है !

कहते हैं, जो आनंद प्रतीक्षा में है, वह मिलन में नहीं—चुम्बन में नहीं—आलिंगन में नहीं । ओह ! प्रतीक्षा में कितनी बेहोशी—आत्मविस्मृति—कितनी तल्लीनता होती है, मधु का कितना अजस्र वेग होता है ।

परंतु—परंतु उससे क्या पूछें, जिसे जीवन-भर प्रतीक्षा ही करनी हो, जिसका जीवन अनंत प्रतीक्षा की उन्मादिनी घड़ियों, संतप्त क्षणों से ही उलझा हुआ हो । उससे तो यह पूछिए कि तुम्हारी इन सावन के सजल नवीन घनों की भाँति जल उलीचती हुई आँखों में कितने आँसू हैं—शुष्क कपोलों पर नील अश्रु-रेखाओं की छोड़ी हुई कितनी शुष्क छलनाएँ हैं—प्राणों में, हृदय में कितना कंपन—कितनी धड़कन और बाँकी है ! जलाकर खाक कर देनेवाली वेदना के कितने शुअले—रक्तंजित आहों की कितनी चिनगारियाँ हैं ! अभी इन सूखे—सुलगते हुए अधरों में कितना धुआँ और उठेगा—अभी कितना हाहाकार हहर-हहरकर इसी प्रकार शून्य में विलीन होता रहेगा !

कौन जाने, कोई उस देखता भी है—सुनता भी है या नहीं !

तारे

राजेंद्र ने देवा के हृदयविपंची के भोले, सुकुमार, किशोर तारों को जगाया और छेड़-छेड़कर उनमें से भाँति-भाँति की रागिनियाँ निकालीं। कभी प्रेमरागिनी निकलकर अनुराग-समीर की लहरियों पर थिरकती हुई उसके हृदय-प्रदेश में गूँजती, तो कभी उल्लास और प्रमोद की रागिनी प्रणय-समीर में नव मधुमास की भाँति बिखरकर मधु की अजस्र धारा बहाया करती—कभी सोहाग-रागिनी व्रीड़ा के निःश्वासों पर मचला करती। परंतु हृदय-हीन नियति उसका सुख न देख सकी। अंत में एक दिन राजेंद्र, अनुराग-दुकूल पर खेलते हुए उन्हीं कोमल तारों से अनंत विषाद और वेदना की रागिनी निकालकर न-जाने कहाँ चला गया। पीड़ा की वही करुणा-सम्मोहन रागिनी उसके प्राण-समीर के कंपित आंदोलन में भर गयी थी।

वेदना और दुःख के इस भंभावात ने देवा के भावोद्यान के कल्पना-किसलयों को झुलसा दिया। सोहाग-सेज पर बिखरे हुए सुख-स्वप्नों के हरित मधुवन को वैधव्य की लू ने झुलसा दिया। वसंत विगत हो गया—सोहाग का कोकिल सदा के लिए मौन हो गया! रह गयी केवल ग्रीष्म की दुर्दान्त ज्वाला। उसका सोने-जैसा संसार पीड़ा के इस अनंत मलिन अंचल में अंतर्हित हो गया। राजेंद्र उसके सूने जीवन को प्रणय के मधुर संगीत से प्रकंपित एवं निनादित करके—उसे प्यार करना सिखाकर—अनुराग की प्याली में प्रणय की शीराजी पिलाकर—उसके हृदय के सुकुमार स्थलों को छेड़कर न-जाने कौन-से लोक को चला गया, और उसके हृदय को उपहार में दे गया—केवल हरित स्मृतियों की दाहक विभूति।

तारे

निराशा की वायु-लहरियों के साथ खेलता हुआ उसका जीवन-संगीत स्वरहीन था। प्रणय-कीलित कल्पना—अतुलित आह्लाद-अभिभूषित उमंगों की सारी रागिनियाँ शून्य के अंतराल में विलीन हो रही थीं। निराशा के उस विस्मृत प्रांगण में कोमल-कलित कल्पनाएँ, कमनीय कामनाएँ—आह्लाद-अभिभूषित अभिलाषाएँ हाहाकार कर उठती थीं।

वह अतीत के सुखी संस्मरणों पर रोया करती। दिन-भर रोना—रात-भर रोना। यह रोना ही उसके जीवन की विभूति—वैभव था। यह रोना भी तभी बंद होता, जब उसका आर्तनाद मूर्च्छित हो जाता तथा नैराश्य से प्रकंपित उसका वक्ष सोने का उपक्रम करने लगता। इस क्रंदन में जब वे दिन बाइस्कोप की तस्वीरों की तरह धूम जाते, तो उसका हृदय सिसकने लगता। वह सुख—वह उमंग—वह प्रणय-स्पर्श सब स्वप्न हो गये। जीवन में कोई तृप्ति न थी, कोई आशा न थी—कोई सुख न था—कोई उत्साह न था—कोई प्रमोद न था—कोई क्रीड़ा न थी—कोई अनुराग न था। था केवल नैराश्य, परिताप, पीड़ा, विदग्धता—एक वेदनाजन्य तड़पन और हृदय को चीर देनेवाली हाहाकारभरी स्मृति !

देवा का यौवन निराशा के—अतृप्ति के आँगन में रोया करता। यौवन के प्याले में पीड़ा छलक रही थी। जीवन क्या था, वेदना का सजीव चित्र था। प्रत्येक क्षण अग्निकण के समान दाहक, उत्तप्त और ज्वालामय। प्रत्येक पल निराश, विह्वल। उसकी मनोहर कल्पनाएँ, अनंत प्रेम-भावनाएँ, मधुर स्वप्न, आशा की गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, विलसित चंचल भावनाएँ—क्षणिक रागिनी की भाँति—शून्य के अनंत प्रदेश में

तारे

विलीन हो गयीं । वेदना के विहँसते हुए उच्छ्वास उसके यौवन-दुकूल पर बिखरे पड़े थे—उदास सौंदर्य को आच्छादित किये हुए । वही आँखें, जिनमें प्रेम और अनुराग की मदिरा छलकती थी, वेदना का विलास-मंदिर बन गयी थीं ; उनमें वेदना विलास कर रही थी—रुदन खिलखिला रहा था—व्यथा मुम्करा रही थी । जीवन की उत्कंठा निराशा की मलिनता में, मंजु मनुहारों संताप के अंचल में और कामना की वह ललित रागिनी पीड़ा की प्रतिध्वनि में अंतर्हित—विलीन हो गयी । जीवन में कुछ न था, कोई भी सुकुमार स्थल न था । था केवल व्यंग्य, उपहास, घृणा और 'उनकी' स्मृतियों की कंटक-शय्या । थे केवल नैराश्य के संतप्त उच्छ्वास—हृदय-तंत्री के टूटे तारों को भंक्रुत करती हुई, उन पर इठलाती, उन्हें मसलती हुई विलाप की लय—प्रेम की भग्न, निराश, लुटी हुई प्रतिध्वनि—हृदय को विक्षत कर देनेवाले विदग्ध प्रेम के वे मार्मिक प्रतिघात—उनकी हृदयांकित प्रेमपूर्ण छाया और अभि-शाप के आवरण से आच्छादित पहाड़-से आनेवाले दिन...।

जिस समय देवा का सोहाग लुटा, उस समय उसकी गोद में दो साल का बच्चा था । देवा के बीते हुए सोहाग-काल की वह यादगार था । देवा का सोहाग-सिंदूर मिट चुका था; परंतु उस निधनी के ललाट के सूने विधान का कुंकुमबिंदु था उसका बच्चा । भग्नता की इस अमावस्या में भी एक तारा था, नीरसता की शुष्कता में भी एक अनुराग स्थल था, तिमिराच्छन्न विजनता में भी एक आलोकबिंदु था, तड़पन में भी शांति और शीतलता की एक छाया थी । और, वह सब कुछ था उसका बच्चा ।

तारे

स्मृति के अंतर्निनाद में एकमधुमय पीड़ा, एक मधुर टीस— एक मीठा-सा दर्द होता है; कभी-कभी एक दाहक वेदना भी । परंतु इन सबके लिए—इन्हें विस्मृति-सरिता में विसर्जित करने के लिए उभे 'वह' एक सुखद, शीतल उच्छ्वास दे गये थे और वह था 'उसका बच्चा' । उसकी सोहाग-समाधि को दीपक की भाँति आलोकित किये हुए था 'उसका बच्चा' ; वैभव के सोहागभरे साम्राज्य के भग्न अवशेषों पर क्रीड़ाभाव से मुस्करा रहा था 'उसका बच्चा' । जीवन के इस प्रलय-प्रवाह में अक्षय-वट-केतु की तरह लहरा रहा था उसका 'बच्चा' ।

देवा ने जीवन की सारी आकांक्षाएँ, सारी अभिलाषाएँ और सारी मनुहारें उसी पर केंद्रित कर दी थीं । संसार के प्रति एक प्रकार की उदासीनता—एक प्रकार के विराग का आविर्भाव उसके हृदय में हो रहा था । उसका जीवन जीवन न था—एक तपस्या, एक साधना था । उतना ही नीरस, कठोर और रूखा ।

परंतु यह वीतराग की भावना टिक न सकी । उसे एक अभाव-सा ज्ञात हो चला । संसार की सांसारिकता से वह भाग न सकी, हृदय की सुकुमार प्रवृत्तियों का दंशन न कर सकी । वह सोचती थी कि अपनी यौवन-कुटिया में तपस्या करेगी और संसार के प्रति विरक्त रहकर जीवन के दिन काट देगी । परंतु संसार की वारुणी जिसके होठों से लग जाती है, जिसे चस्का पड़ जाता है, वह फिर उसे नहीं छोड़ सकता । अक्सर ऐसा होता कि नैराश्य की तमोमयी यामिनी में मलय-मारुत उसकी स्मृति का कंपित पट खोल देता और देवा उद्दाम वेदना की छाया के नीचे रुदन की नीरवता में, विलाप के विजन

तारे

प्रांत में, हाहाकार के मलिन अंचल में दुबकी हुई स्मृति-कुंज में विहार किया करती। निराशा की गोद में जागती हुई देवा के हृदय में रुदन के बिखरे हुए उच्छ्वासों का अभिसार होता। चिरसंचित आशाएँ नैराश्य के निशीथ में रोया करती— किलकती हुई उमंगें अधैर्य के गर्त में गिरकर हाहाकार कर उठतीं। यौवन-वारुणी-विलसित नेत्रों में कल्पना की वही तस्वीरें आ-आकर घूमने लगतीं और वे भीग जातीं।

इतने में सहसा पौ फट जाती और देवा को ऐसा प्रतीत होता, जैसे उषा सुन्दरी अपनी अनुराग-रंजित आँखों से उसकी उद्दाम वेदना-व्यथा की करुण-कहानी प्रियतम बालरवि से कह रही है और वह उसे सुनकर सिहर उठे हैं; उनकी गरम आहें—संतप्त उच्छ्वास किरणों के रूप में तरु-पल्लवों पर बिखर गये हैं।

देवा को सुख की बिखरी हुई निधियाँ, रस का अविरल प्रवाह, प्रणय की मधुर हाम्यरेखा, उल्लास की दुग्ध फेनिल मुस्कान अपने जीवन की सीमा से दूर—बहुत दूर ज्ञात होती थीं।

उसका वैधव्य अपने तीसरे वर्ष में पदार्पण कर रहा था।

धीरे-धीरे....

अंतस्तल में सुप्तप्राय वासनाओं ने करवट बदली। वे जर्गी और आँधी की भाँति उसके यौवन-क्षितिज को भक-भोरने लगीं। अतृप्ति का अवसाद, जीवन का सूनापन—विजयता, तीव्रता के साथ वासनाओं का उद्रेक कर रहे थे। लालसा—नैराश्य के संतप्त उच्छ्वास—विलास की मदमत्त आकांक्षाएँ—प्रवृत्ति की मादक थपकियाँ वासना को उद्वेलित

तारे

कर रही थीं। जीवन-प्याले में यौवन-मदिरा उमड़ रही थी—वासना के ये भोंके उसे छलका देते, और प्यासी ज़मीन तो उसे सोखने के लिए मुँह बाये खड़ी थी ही !

जीवन-सागर उद्वेग की लहरों से आंदोलित हो रहा था और वे जा-जाकर मानस-तट से टकराती थीं। देवा का अंतस्तल वासना की इन्हीं प्रवेगमयी धाराओं से शराबोर रहता ; उसके हृदयमंच पर वासनाएँ आ-आकर नाचा करतीं। वासना की उत्तुंग तरंगमाला की भाँति तूफानी लहरों में डूबती-उतराती हुई देवा विलासिता की वारुणी के गुलाबी नशे में मस्त होकर भूमा करती।

वासनाओं का चंचल उद्वेलन भावनाओं को पागल और उन्मत्त कर रहा था, उसकी कल्पना और मनोभावों का प्रवाह दूसरी ओर बढ़ चला। विलास के मालतीकुंज में, प्रणय के—भोग के मधुमादकता-सिंचित नंदनकुंज में विहार करने के लिए वह आकुल हो उठी।

देवा जब देखती कि कौमुदी-विभोर विभावरी प्रियतम चंद्रदेव के साथ इठला रही है, वह उसके दुग्धफेनिल ज्योत्स्नांचल को चंचल कर रहे हैं, उसकी देवरानियों और जेठानियों का हृदय प्रियतम के आलिंगन-संसार में विचरण कर रहा है—प्रेम की उन्मत्त कर देनेवाली वारुणी पीकर सोहाग-शय्या पर मचल-मचलकर मादक तंद्रा के मधुर क्रोड़ में भूम रहा है, उस समय उसका हृदय मूर्च्छित होकर हाहाकार के वक्ष पर गिर पड़ता।

प्रातःकाल जब बालरवि के प्रेम-उच्छ्वास और निःश्वास बिखर-बिखरकर प्रेयसी उषा के कपोलों पर ब्रीड़ा छिटका

तार

देते और वे गुलाबी हो जाते, उस समय देवा देखती कि उसकी जेठानियों और देवरानियों के श्रांत मुख-मंडल पर प्रस्वेदबुंद, गुलाब के अरुण कपोलों पर तुहिन-बिंदुओं की भाँति, फफक रहे हैं—उनके विलास-विलसित वक्ष-प्रदेश पर मौक्तिक-माल के कण, सरिता के स्वच्छ निर्मल वक्ष पर ज्योत्स्ना के टुकड़ों की भाँति, बिखरे पड़े हैं ; उनके तांबूल-राग-रंजित कपोलों पर सोहाग-त्रीड़ा का भीनाभीना आवरण झिलमिला रहा है और उनीचे नेत्रों में जीवन की सुकुमार अनुभूतियों की छाया झलक रही है—उस समय उसके हृदय में विद्रोह होने लगता ।

वह राजेंद्र की विस्मृत स्मृति के साथ मचलती हुई वासना-लोक में निकल पड़ती । रह-रहकर अतृप्ति की दाह अतृप्ति की आह भभक उठती । हृदय के शीतल स्थल उत्तप्त हो जाते ।

अरे

रमेश देवा के घर के बगल में रहता था । एक दिन वह अपनी छत पर टहल रहा था कि देवा ऊपर गयी । देवा ने देखा, रमेश उसके अस्तव्यस्त सौंदर्य को—सावन के नये घनों के समान उमड़ते हुए उसके यौवन की सज्जल वारिदमाला को लालसाभरी अधीर दृष्टि से देख रहा है । वह सिहर उठी, लजाकर नीचे उतर आयी ।

उस दिन रात को वह कल्पनाओं के जाल में उलझी रही ।

दूसरे दिन न-जाने किस अदृश्य शक्ति ने—किस अज्ञात प्रेरणा ने उसे ऊपर की ओर खींचा । किसी ने जैसे कानों में कहा—“वहाँ जाना ठीक नहीं है—विधवा को यह शोभा नहीं देता ।” किंतु दूसरे ही क्षण यौवन की उच्छ्रंखलता ने कहा—

नवासी

तारे

“ऊपर जाने में कौन-सा हर्ज है। अपनी छत पर जाती हूँ। इसमें कौन-सा पाप है। कोई देखे तो इससे क्या। किसी की आँखों को तो मैं रोक नहीं सकती। अपने मन में कोई पाप न होना चाहिए।”

वह ऊपर गयी। रमेश बाँसुरी लिये बैठा था। देवा को देखते ही वह बाँसुरी बजाने लगा। बाँसुरी की रमभरी स्वरलहरी देवा के हृदय को स्थावित करने लगी।

जब तक बाँसुरी बजती रही, देवा मंत्रमुग्ध-सी खड़ी कल्पनाओं के लोक में भ्रमण करती रही। बाँसुरी का आत्म-संवेदक स्वर आ-आकर देवा की हृदयवीथिकाओं में उन्माद बिखेर रहा था। वह प्रमत्त होकर यौवन की उच्छृंखल वासंती वयार में भूम रही थी। एकाएक बाँसुरी रुकी और देवा के हृदय में एक टीस-सी हुई। वह बेसुध-सी होकर नीचे उतर आयी। उसके यौवन ने एक अशांति, हृदय ने एक व्यथा-सिक्त मीठा दर्द मोल ले लिया। न-जाने कौन-सी कल्पना ने उसके तिमिराच्छन्न हृदय में एक क्षीण आलोक उद्भासित कर दिया। एक अज्ञात प्रलोभन के मादक टुकड़े उसके हृदय-दुकूल पर बिखर गये। उसकी उद्दाम भावनाएँ सिहर उठीं।

देवा ने देखा—रमेश की आँखों में अनंत प्रेम की सुहावनी छाया है, प्यार और अनुराग छलछला रहा है। प्रेम के इस नीरव संगीत के प्रमादपूर्ण प्रवाह में वह बह चली। हृदय प्रकंपित हुआ, यौवन अशांत हुआ—विलास-वृत्तियाँ आंदोलित हुईं, दिल में भीना-भीना-सा दर्द हुआ। एक बार फिर उसकी भोग-भावनाएँ किसी के साथ रम-रास रचकर नाचने के लिए

तारे

आकुल हो उठीं । उन्माद की रंग-विरंगी मोहक तस्वीरें नेत्र-पटल पर खिंच गयीं ।

अंतस्तल में भावों का उत्पीड़न हुआ । रमेश के उन्मादकारी सौंदर्य में देवा अपने रूप और यौवन, आशा और सुख, उत्कंठा और लालसा के साथ सुलगने लगी ।

बेहोशी ..

आँखों में उत्तेजना होती है—एक प्रकार का उद्दीपन होता है—कल्पनाओं की आँधी होती है—भावनाओं का भ्रंशवात होता है—बेहोशी का तूफान होता है—उद्धेलित यौवन की मस्ती होती है । अंतस्तल में जो विद्रोह—जो प्रकंपन होता है, आँखों में उसकी छाया नाचा करती है । देवा की आँखों में भी एक मूर्तिमयी अभिलाषा, लालसा, सजीव उन्माद और बेसुध मस्ती झिलमिल रही थी । जिन आँखों में पहले अश्रु-बिंदु परिमुक्त होकर झिमझिमाया करते थे, उन्हीं में अब वासना नग्न नृत्य करने लगी । जो आँखें रमेश की ओर देखकर पहले व्रीड़ा-भार से झुक गयी थीं, वही अब लालसा से भूमने लगीं । उन्हीं आँखों की ओट से—जिनके विलाप के मलिन स्रोत में कामनाएँ, अभिलाषाएँ और अरमान विलीन हो रहे थे और उनकी विलीनता के अवशेषों पर वीतराग विपादपूर्वक मुस्करा रहा था—अनंग ने भाँक-भाँककर नीरव स्वर में रमेश का पथ निर्दिष्ट कर दिया, जैसे अपनी नीरव भाषा में उन्होंने रमेश से सभी कुछ कह दिया हो और उसके यौवन के गतिशील चरणों पर अपना भार डाल दिया हो ।

×

×

×

एक दिन अवसर देख, एकांत पाकर रमेश ने कहा—प्रिये,

इक्यानवे

तार

इस तरह कब तक हम तुम एक दूसरे के लिए तड़पते रहेंगे ! इस प्रकार तो हमारा-तुम्हारा मिलन असंभव है । हम लोग अधिक समय तक बातें भी नहीं कर सकते । न-जाने कितनी बार इच्छा हुई कि तुम्हारे लाल-गुलाल कपोलों पर छलकती हुई यौवन-वारुणी का प्याला मेरे प्यासे होठों को रस से शराबोर कर दे । भला वह कौन-सा दिन होगा, जब हम-तुम एक दूसरे का प्रणय-भार लेकर मिलन-के सुनहले संसार में भ्रमण करेंगे ?

प्रकंपन से बिखरे हुए स्वर में देवा ने कहा—प्यारे ! मैं तो स्वयं तुम्हारे प्रणय-स्पर्श के लिए व्याकुल हूँ । वह कौन-सा दिन होगा, जब हम-तुम प्रणय-नौका पर चढ़े हुए अनुराग-सागर में विहार करेंगे ! उसी दिन मेरे जीवन का सुनहला स्वप्न सार्थक होगा । उसी दिन मेरी आँखों की प्यास बुझेगी, लालसा तृप्त होगी—किसी के होठों का प्यार बरस-बरसकर मेरे होठों को मधुरिमा से नहला दे, यह कामना पूर्ण होगी । उसी दिन तुम्हारे प्रकंपित वक्ष पर अपना सिर रखकर मनुहार-भरी दृष्टि से तुम्हारी ओर देखूँगी और कल्पना के मादक स्वप्नों के लोक में भ्रमण करती हुई, प्यार के छींटे उछालती हुई जीवन की उपत्यका में तुम्हारे चुंबन-आघातों को मधु का दान दूँगी । तो बोलो प्यारे ! वेदना, निराशा, अवृत्ति, अभाव, अशांति और तृष्णा के इस विजन संसार से मुझे कब मुक्त करोगे ? मैं तुम्हारे साथ नरक में भी कल्पनालोक-मय स्वर्गराज्य की वीथियों का निर्माण कर सकती हूँ ; तुम्हारे हृदय से सिमटकर इस सुनील अम्बर के नीचे स्थित एक भोपड़ी में ही अपने क्षुब्ध जीवन की अंधकारपूर्ण घड़ियाँ काट दूँगी ।

बानबे

तारे

रमेश—प्रिये ! यह जीवन अब तुम्हारा है । इसकी स्वामिनी तुम हो । इसका प्रत्येक क्षण तुम्हारे ही भृकुटि-विलास का संकेत निहारता है । वह देखो ! आकाश के अनंत वक्ष में हमारे प्रेम का प्रमाण चन्द्रदेव की भाँति जड़ित है ।

देवा—अच्छा, तो शीघ्रता करो । तुम्हारे विना यह जीवन-प्रांत शून्य तथा आलोकहीन है , विभावरी की राशि-राशि उज्ज्वलता जैसे तमावृत ब्रह्मांड है ।

उन्माद....

उस दिन रात-भर देवा को नींद नहीं आयी । रह-रहकर भविष्य के सुंदर स्वप्न, वासना के सुरभि-सिंचित पट उसे विमुग्ध करते रहे । रमेश मेरे होंगे—मैं उनकी होऊँगी । वह मुझे प्यार करेंगे, मैं उन्हें प्यार करूँगी । अभिलाष के आवरण में लिपटे हुए दोनों प्रेम के मधुर क्रोड़ में भूमेंगे । उनकी प्रेम-मंदाकिनी का स्निग्ध शीतल प्रवाह मेरे हृदय के—यौवन के तप्त अंगों को शीतल करेगा । कोई कामना—कोई लालसा—कोई अरमान—कोई हविस बाकी न रहेगी ; रहेगी केवल एक तृप्ति—एक अनन्त तृप्तिमय आनन्द ।

वासना के छींटे प्रवेग के साथ आ-आकर देवा के अंगों पर विहँसती हुई यौवनबाला को चंचल कर रहे थे ।

प्रातःकाल के सुखद स्वप्न में वह कल्पना करने लगी—कल बालरवि से आलिंगित प्राची प्रियतम के आलिंगन-पाश में मुझे देखकर लज्जित होगी—ईर्ष्या करेगी ! हाँ, कल का प्रभात मेरी हृदय-वीथियों के स्वर्णमय, कमनीय, मधुर एवं उन्मत्त उन्माद से स्निग्ध होगा । मेरे जीवन की उमंग, उल्लास एवं रसरंग की स्वर-लहरी में—प्रकंपित तन्तुओं की अलख

तारे

व्यंजना में पक्षियों का संगीत मुखरित होगा—भृंगों की गूंजार में प्रस्फुट कमल-कलिका का नीरव राग रंजित होगा !

सारे दिन देवा के ऊपर एक मद-सा सवार रहा। एक मस्ती-सी छायी रही। वह एक जीवन की यात्रा कर रही है; कौन-कौन से उपादानों की आवश्यकता है, उसने सब सोच लिया। आँखें भूम रही थीं। यौवन की मादक मुस्कान अरुण कपोलों पर विहँस रही थी। आकृति पर उल्लास और सुहास बरस रहा था। ढीले अंगों से उच्छ्वास फूट रहा था। रोमराजी पुलकावली के झरोखों से भाँक-भाँककर अंतर्जगत् में किसी का मूक आह्वान कर रही थी।

रात्रि का समय था। सारा संसार निस्तब्धता की गोद में दुबका पड़ा था। देवा की देवरानियाँ-जेठानियाँ प्रभात की चिन्तना से विमुक्त जीवनतंद्रा में विभोर हो रही थीं। सर्वत्र चेतना के प्रांगण में जैसे निद्रादेवी स्वच्छंद विलास कर रही थीं। सुधाकर की रजत-रंजित छाया ज्योत्स्ना अवनीतल की निस्तब्धता के ऊपर दुग्धफेनिल चादर के समान पड़ी थी, मानों प्रकृति ने शुक्ल अभि-सार की इच्छा-मात्र से संसार को अचेतन कर दिया हो—जाग रहा हो केवल उसका प्रियतम पुरुष। देवा ने देखा, रमेश अपनी छत पर आतुरतापूर्वक टहल रहा है। वह दबे पैरों आँगन में आयी। एक बार—केवल एक बार उसका हृदय विचलित हुआ। किंतु वासना की वल्लरियों ने दूसरे ही क्षण उसे छत पर ला खड़ा किया। एक आराधक की भाँति प्रेमांजलि समर्पित करते हुए उसने मन में कहा—प्यारे, मैं तुम्हारे हाथों में—तुम्हारे प्रणय-पुरुष के चरणों पर अपना जीवन समर्पित करती हूँ।

चौरानवे

तारे

रमेश अपनी मुँडेर पर बैठ गया। देवा को बाहुपाश में बाँधने ही वाला था कि एकाएक वह काँप उठी। 'ठहरो' !— उसने विकीर्ण स्वर में कहा। उसे लालू का स्मरण हो आया। उसका हृदय हिल गया। एक बार—केवल एक बार अपने कलेजे के टुकड़े को देखने के लिए वह पागल हो उठी। ममता का ज्वार आया—वेग की लहर आयी। बोली—'प्यारे, ज़रा रुको। लालू.....'

रमेश—अरे, जाने भी दो। अब तो तुम उसे छोड़ ही रही हो।

देवा—नहीं, ठहरो, मैं आती हूँ।

वह नीचे उतर आयी। जाकर देखा, लालू निर्विकार निद्रा के सुख में विभोर है। निष्कलुष मुख पर हास बरस रहा है। 'निंदिया' के मंदिर में स्वर्गीय देवदूतों के साथ खेलते हुए लालू के मुख पर मधु-मुस्कान शरदू-ज्योत्स्ना की भाँति बिखरी हुई है।

देवा ने एक बार लालू की ओर सतृष्ण दृष्टि से देखा। सहसा उसके हृदय पर एक धक्का-सा लगा। हाय ! मैं क्या करने जा रही हूँ—क्या लालू का जीवन नहीं खराब कर रही हूँ ? उसके सर्वनाश को निमंत्रित कर रही हूँ। मातृहीन बालक कितना भाग्यहीन होता है, उसकी दशा कितनी कारुणिक होती है ! लालू को न-जाने कौन-कौन-से कष्ट भोगने पड़ेंगे। न-जाने कौन-कौन-से अत्याचार, कौन-कौन-सी ताड़नाएँ उसे सहनी पड़ेंगी। उसके नेत्रों के सामने चित्र घूम गया। लालू दुलार और प्यार-स्नेह के बिंदुविसर्ग के लिए, ममत्व के एक-एक उच्छ्वास के लिए तरस रहा है। कोई उसे प्यार करनेवाला

तारे

नहीं—कोई उससे प्रेम से बात नहीं करता—कोई अपनत्व नहीं दिखाता। उसका हृदय प्यार की एक बूँद—एक क्रतरे के लिए तड़प रहा है, परंतु कोई उसकी प्यास नहीं बुझाता !

उसकी कल्पना ने और भी भयानक कल्पना की—लालू जैसे बीमार पड़ा है। मारे पीड़ा और संतर्पण के कराह रहा है—तड़प रहा है। प्यास से गला सूख रहा है। कोई एक बूँद पानी नहीं देता, सिर पर कोई स्नेह का हाथ रखनेवाला नहीं। चाचियाँ अपने उल्लास में—अपने बच्चों के दुलार में मस्त हैं।

देवरानियों और जेठानियों के लड़के मिठाइयाँ और मोदक खा रहे हैं, और लालू उनकी ओर सतृष्ण दृष्टि से देख रहा है; किंतु उसके लिए स्नेहाश्रु का एक कण भी नहीं ! कोई उसे मिठाइयाँ देनेवाला—दिलानेवाला भी नहीं !! बच्चे नये कपड़े पहने चाव से आमोद-प्रमोद करते—क्रीड़ा करते हैं—उल्लास से नाचते हैं ; किंतु लालू वही फटे-पुराने, गुँथे और मैले कपड़े पहने है। लालू सजल-सकरुण दृष्टि से देखकर अपने सूखे हुए हृदय को आर्द्र कर लेता है—उनके नये रेशमी कपड़ों की ओर टुकुर-टुकुर निहारा करता है।

हाथ का कजरौटा सिरहाने रखकर एक बार देवा ने अपने चारों ओर देखा, अपने लालू के अंग-प्रत्यंग का चुम्बन किया। पुनः एक बार फिर उसकी कल्पना ने कल्पना की—दुर्भाग्य की विडंबना तो देखो। भाग्यहीन बालक पर कितना अत्याचार होता है। वह बड़ा होता है, तो उठते-बैठते आते-जाते पग-पग पर लांछित एवं अपमानित किया जाता है। उसे कुलकलंकिनी—कुलटा—भगोड़ी का पुत्र कहकर संबोधित किया

छियानवे

जाता है। पग-पग पर अपमान, अवहेलना और तिरस्कार—व्यंग्यों की बौछार, उसके सिर पर एक कलंक-सा धरा रहता है। वह सिर ऊँचा करके चल नहीं सकता। एक प्रकार की अस्पष्ट, किंतु अमिट कालिख-सी उसके मुँह पर लगी हुई है ! इस कालिख से लिपटा हुआ उसका मुख कितना दीन, संकुचित, लज्जित और व्यथित प्रतीत होता है, मानों अपने दुर्भाग्य पर रो रहा है। आत्मग्लानि का अवसाद उसे घेरे रहता है। लोग उस पर व्यंग्य बोल-बोल कर उसका दिल तोड़ देते हैं—कलेजा मसल देते हैं। ये व्यंग्य-बाण मेरे लालू का कलेजा चीरते हुए चले जाते हैं !!

लालू विवाह के योग्य होता है; परंतु जो लोग आते हैं, वे यह सुनकर कि लड़के की मा किसी के साथ भाग गयी थी, चले जाते हैं। चलते समय उनकी आँखों की ओर से जो घृणा, तिरस्कार और अवहेलना भाँकती है—उसे भी देवा ने कल्पना की आँखों से देख लिया.....

तो मैं लालू का जीवन खराब कर रही हूँ ! उसका माथा ठनका। अरे, यह कलंक छाया की भाँति उसके भाग्य से यावज्जीवन लिपटा रहेगा। उसे घृणा, उपहास, व्यंग्य, तिरस्कार, अपमान, लांछन का लक्ष्य बना देगा। वेदना, ग्लानि, प्रतीकार का हाहाकार-भरा अग्निकुंड उसके हृदय में दहकता रहेगा। देवा सहम उठी। उसका कलेजा जलने लगा। यह कुछ क्षणों का प्रलोभन लालू के अस्तित्व को ही मेटने का कारण होगा—उसके जीवन को भूभार बनाकर, अंतर्दीप का निर्वाण कर अंधकार का सृजन करेगा ! वह आगे न सोच सकी। उसकी कल्पना मूर्च्छित हो गयी.....

तारे

देवा के हृदय में कसक की एक लहर आयी। कल्पना के फूल जलते हुए अंगारों की तरह उसके नेत्रों के सामने नाचने लगे। उसने स्पष्ट देखा, एक ओर यौवन की शीराज्जी ढालते हुए एक उत्तम, उच्छ्वसित, स्पंदित हृदय के साथ आँखमिचौनी खेलना, उन्मत्त आलिंगन-संसार में पागल होकर घूमना—दूसरी ओर कल्पना से भी कोमल, सुमन से भी सुकुमार 'लालू' के जीवन-जाल को अभिशाप और विनाश के सूत्र से गँथना।

प्रकाश का एक पुंज उसकी पागल, उन्मादिनी पुतलियों के सामने नाचने लगा। उसका सुपुत्र नारीत्व जागृत हो उठा। मातृत्व की वह उन्मत्त आँधी—वासना की, रमणीत्व की भूमती हुई सजल वारिदमाला को न-जाने कहाँ उड़ा ले गयी।

उसका बच्चा

देवा ने निद्राभिभूत बालक को गोद में उठाकर चूम लिया। उसने देखा, उस चुम्बन में एक प्राणसंचारी जीवन है—पूर्व का वह अरुण आलोक है, जिसकी प्रच्छन्न प्राणप्रद स्वर्णिम रश्मिराशि में वासना की रुपहली चंद्रिका भभूत की भाँति बिखरकर शून्य में विलीन हो गयी है।

x

x

x

दूसरे दिन का मंगल-प्रभात कितना सत्य, शिव एवं सुन्दर था !!

नारी

नारी

मेरे एक प्रिय मित्र ने मुझे एक दिन अपने जीवन की निम्नलिखित घटना सुनायी--

उन दिनों मैं कलकत्ते में था। वहाँ युनिवर्सिटी से बी० ए० पास करने के बाद मैं आगे न पढ़ सका। घर में एकाएक पिता की मृत्यु हो जाने से मेरे ही ऊपर सारा भार आ गया। मेरे चारों ओर विश्व की प्रचंड भीम तरंगें मुँह बाये घूम रही थीं और उनके बीच में मैं एक नैराश्य-जनित, अन्धकारप्रसूत, छलनामय भय-चिंतना में बहा जा रहा था। कहीं कोई सहारा नहीं दिखाई देता था। कुछ समय में ही न आता था कि क्या करूँ। उन दिनों मैं न जाने किन मायावी छलनाओं से पराभूत होकर

एक सौ एक

तारे

अपने संतप्त अभिभूत हृदय को आश्वासित किया करता था। अपने चारों ओर छाये हुए इस अन्धकार में एक दिन मैंने आशा की एक धुँधली अस्पष्ट लघुज्योति-किरण देखी, जब मेरे एक मित्र ने कहा—“भाई केदार ! यों तो तुम्हें नौकरी मिलने से रही। जानते हो, आजकल अच्छे-अच्छे मारे-मारे फिरते हैं—नौकरी आकाश-कुसुम हो रही है। फिर तुम ठहरे थर्ड डिवीजनर।”

मैंने कुछ उदास होकर कहा—“तो भई, कौन मैं प्रोफेसरी चाहता हूँ। कहीं मामूली तीस-चालीस रुपये की क्लर्की मिल जाय, उसे ही मैं बहुत समझूँगा। डूबते हुए को तिनके ही का सहारा बहुत है।”

मेरे मित्र ने कहा—“यह भी असंभव है। सालों बेकार बैठोगे। फिर मिले मिले, न मिले न मिले। इसलिए मेरी तो राय है कि तुम मोटर-ड्राइवरी का इम्तिहान पास कर डालो। कुछ ही महीनों में तुम इस योग्य हो जाओगे कि पचास-साठ रुपये कमा सको। यहाँ कलकत्ते में उस हालत में तुम्हें सर्विस मिलने में कोई कठिनाई न होगी।”

मोटर चलाने का मैं पहले से शौकीन था। कलकत्ते आने के पहले मैं भागलपुर में था। वहाँ मेरे एक मित्र के पास छोटी-सी ‘वेबी-आस्टिन’ कार थी। उसे वह स्वयं चलाया करते थे। ड्राइवर पीछे बैठा रहता था। मुझे भी उन्होंने सिखा दिया था। मैं बखूबी मोटर चलाना जानता था, परन्तु इम्तिहान पास न होने से कोई नौकरी नहीं मिल सकती थी।

कई दिन तक मैं यही सोचता रहा कि यह काम करूँ या न करूँ। बी० ए० पास करने के बाद (भले ही थर्ड डिवीजन में

तारे

क्यों न हो) मुझे मोटर-डाइवरी करने में बड़ी भिन्नक मालूम होती थी । कहाँ तो मैं भावी जीवन के इतने सुनहले स्वप्न देखा करता था—मेरा लघु-भार चित्त सदा इन्द्र-धनुष की रंगीन लहरों पर उतराता हुआ सुख के ज्योतिजाल में आवद्ध आसक्त रहता था ; और कहाँ यह निगूढ़ परिवर्तन ! रह-रहकर एक प्रकार की प्रकंपनशील अनुभूति से मैं सिहर उठता था, और नियति का यह अद्भुत व्यापार मुझे एक अलस दिवास्वप्न-सा प्रतीत होता था । लेकिन मजबूरी थी । दूसरे ही दिन मैंने मित्र से अपना विचार कह सुनाया और उन्हीं की सहायता से ट्रेनिंग के लिए चला गया । छः महीने का कोर्स था ।

जब मैं पास करके आया, तो देखा कि मित्र ने पहले ही से नौकरी ठीक कर रखी है, मेरे लाइसेंस लेने भर की देर है । एक मारवाड़ी सेठ के यहाँ मुझे काम करना था । वेतन साठ रुपये तय हो चुका था । कलकत्ते आने के एक ही सप्ताह बाद मैं वहीं सेठ साहब के यहाँ चला गया ।

सेठ साहब कलकत्ते के इने-गिने करोड़पतियों में एक थे । उनकी अवस्था लगभग ४५ वर्ष की थी । मोटे, ठिंगने और गोरे—शौकीन आदमी थे । परन्तु विलासिता की श्याम रेखाओं से उनकी मुखश्री विशेष रूप से दर्शनीय हो गयी थी । उनकी एक-एक चाल से, एक-एक भंगिमा से, एक-एक मुद्रा से अपने अपार धन का अटूट गर्व टपकता था । मैंने यहाँ आकर सुना कि यह सेठजी की स्वयं उपार्जित संपत्ति है और जिस प्रकार एक महाकवि कोई महाकाव्य लिखकर गर्वपूर्वक उसको देखता है, उसी प्रकार

तारे

सेठ साहब भी अपने गर्व में कभी-कभी उद्दीप्त हो उठते हैं। उनकी यह मुद्रा नौकरों से छिपी न रहती थी। सेठ साहब के पास आठ मोटरें थीं। शहर के बाहर उनके चार विलास-उद्यान थे, जहाँ कभी-कभी सेठ साहब जाया करते थे और रात-भर वहीं रहते थे।

मुझे बाद में यह मालूम हुआ कि उन चार उद्यान-गृहों में सेठजी की चार चहेतियाँ हैं। वहाँ उनमें में प्रत्येक के पास भी एक-एक मोटर थी, और एक बार जब मैं सेठजी को एक विलास-गृह—जिसका नाम 'प्रेमभवन' था—पहुँचाने गया तो मुझे यह सब हाल वहाँ के मोटर-ड्राइवर से मालूम हुआ था। सेठजी तो मुझे जाने के लिए कहकर ऊपर चले गये, परन्तु

थोड़ी देर तक मुग्ध, चकित और कुछ-कुछ अतृप्त आँखों से उस विलास-उपवन की सुन्दरता ही देखता रहा। मैंने कलकत्ते में एक-से-एक सुन्दर भवन और आनन्द-उद्यान देखे थे, परन्तु प्रेमभवन को देखकर मैं सचमुच विस्मित हो गया। उपवन की रंगीन सौंदर्य-सुषमा से—भाँति-भाँति के रंगीन देशी और विलायती पुष्पों तथा लताओं में घिरा हुआ वह संगमरमर का विशाल प्रासाद मानों कलकत्ते के हाहाकार और चीत्कार से सर्वथा अपरिचित था। शोभा की सचल सजग सजीव किरणें मानों उस उपवन पर इन्द्रजाल—मोहकता का एक अदृश्य परन्तु अनुभूति-गम्य भीना आवरण बुन रही थीं और वहाँ के मौन निस्तब्ध देश को सुदूर के राज्यों की कलालापध्वनि आकर आन्दोलित कर देती थी। मैं मन ही मन एक भय-मिश्रित कुतूहल का—एक प्रकार की आश्चर्य-प्रसूत अव्यक्तता का अनुभव करते हुए लौट आया।

एक सौ चार

तारे

मुझे नौकरों से यह भी मालूम हुआ कि प्रेमभवन में रहने वाली, सेंठजी की प्रेमिका का नाम मोहिनी है। वैसी सुन्दरी वेश्या यहाँ कलकत्ते में दूसरी नहीं है। न-जाने कितने रईस उसके लिए लालायित हैं। परन्तु सेंठ ने दस हजार रुपये महीने देकर सबका मुँह मार दिया है। सेंठजी के अद्वितीय प्रेमभवन में वह रंभा और उर्वशी की भाँति विलासशिथिल, अलस, मंथर जीवन व्यतीत करती है। न-जाने कितनी दास-दासियाँ उसकी सेवा के लिए प्रस्तुत रहती हैं, और एक बढ़िया 'रोल्सराइस' कार उसके लिए अलग है जिस पर वह राजरानी की भाँति कभी-कभी अपने हीरक-आभरणों में दामिनी-सी दमकती हुई, अधरों की इन्द्रधनुषीय मदिरा में राशि-राशि उन्माद लिये हुए कलकत्ते की सड़कों पर ऐश्वर्य-कला-सी घूमती है। उसके सौन्दर्य को देखकर किसकी आँखें नहीं भूँस जातीं ! इस नव-यौवना के आकर्षण में कलकत्ते का एक-एक कण उलझ जाता है ; इसको देखकर बड़ी-बड़ी सुन्दरियाँ भी आश्चर्य-स्तंभित हो जाती हैं। रति-फेनिल शरीर की एक-एक मांस-पेशी में उमड़ती हुई, एक-एक नस में लहराती हुई जो मद की धारा फूटती है, उसमें उसके आसपास का संसार उद्दीपन की भाँति डबने-उतराने लगता है। उसकी नस-नस में बहते हुए—हिलोरे भरते हुए उच्छ्वल यौवन के उद्दाम तरंगालोड़ित ज्वार को रोक सके—ऐसी विश्व में किसकी सामर्थ्य है ! ऐसी है वह मोहिनी—अनंग की सखी, रति की सहोदरा और अर्धनग्न अवयवों से अधढके, अधबुले लावण्य के कुसुमयूथों में परी की भाँति इठलाती हुई मोहिनी !

मुझे यह भी मालूम हुआ कि मोहिनी एक प्रकार से सेंठ

तारे

साहब का सर्वस्व है। मजाल नहीं कि वह बुला भेजे और सेठ साहब न आवें, या वह मना कर दे और सेठ साहब आ जायँ। सेठ साहब इतना कदाचित् अपनी भाग्य-लक्ष्मी से भी न डरते होंगे। एक बार किसी प्रसंग पर उसने सेठ साहब को बुरी तरह डाट बतलायी थी और आठ दिन तक अपने यहाँ आने नहीं दिया था। उसके बाद जब सेठ साहब ने न-जाने कितनी अनुनय-विनय की, तब जाकर कहीं मोहिनी ने उन्हें माफ किया था। वह मानिनी, दर्पपूर्ण स्वभाववाली मोहिनी जिस समय चलती है मानों उस समय धरती काँपती है, आकाश डोलता है—सौंदर्य-सागर में भयंकर तूफान चलने लगता है जो मानों संसार के हृदय को मथकर फेंक देगा।

मोहिनी की प्रशंसा सुन-सुनकर मैं विस्मित हो सोचता—क्या वास्तव में वह ऐसी होगी ? कलकत्ते में तो मैंने एक से एक अपूर्व सुन्दरियाँ देखी हैं।

..... अकस्मान् एक दिन सेठ साहब ने मुझे बुलाकर कहा—देखोजी, तुमको अब जाकर प्रेमभवन में रहना होगा। यहाँ तुम्हारी जरूरत नहीं है। वहाँ गनी साहब की कार के लिए ड्राइवर की जरूरत है।

मैंने कुछ चौंककर कहा—कहाँ साहब ! सेठ साहब ने साधारण भाव से कहा—प्रेमभवन में। तुम तो प्रेमभवन जानते हो ; दो महीने तुम्हें आये हो गये। मुझे भी वहाँ कई दफा ले गये हो।

मैंने कहा—हाँ, जानता क्यों नहीं हूँ। तो मुझे कब जाना होगा ?

सेठ साहब ने उसी भाव से कहा—दोपहर तक चले जाना।

एक सौ छः

तारे

अपना सब सामान लेते जाना । वहाँ तुम्हारे लिए कोठरी है ।
किसी चीज़ की जरूरत तो नहीं है ?

मैंने कृतार्थ-सा होकर कहा -- नहीं ।

उसी दिन दोपहर को एक दूसरी कार पर अपना सामान
लेकर प्रेमभवन की ओर चल दिया ।

x

x

x

उसी दिन शाम को एक नोकर ने आकर कहा--रानी साहब
सैर को जायँगी ; कार ठीक करो ।

यहाँ आकर मुझे मालूम हुआ कि मोहिनी को सब लोग
रानी साहब ही कहते हैं । स्वयं सेंठजी भी उसे रानी साहब
कहकर पुकारते हैं । अभी तक रानी साहब की मोहिनी मूर्ति
का दर्शन मैंने नहीं किया था ; कुछ ही मिनटों के बाद मैं उस
सुन्दरी स्त्री को देखूँगा जो कलकत्ते की सबसे रूपवती वेश्या है—
जिसके एक-एक कटाक्ष पर न-जाने कितने चलचित्र इस विराट्
शून्य में घूमने लगते हैं, जिसकी एक मन्द मधुर दृष्टि से
न-जाने कितने श्रीमानों का हृदय पुलक-विह्वल होकर उच्छ्वल
उमंगों में तरंगित होने लगता है । सोचने लगा, मैं भी उसके
साथ कार पर बैठने का सौभाग्यशाली बनूँगा जिसके एक-एक
भृकुटि-विलास में न-जाने किस रहस्यमय उद्दीपन का गोपन
रहता है । मैं उस नवेली अलवेली को देखूँगा—भरनेत्र
देखूँगा—जो अपनी मोहिनी माया और जादू की पेन्द्रजालिक
सुधता में विश्व को फेनों की भाँति ऊपर-नीचे झुला देती है ।

मैं गैरिज से कार निकालकर महल के पास ले आया ।
कुछ ही क्षणों के बाद एक अप्सरोपम, लवंगलता-सी लचक-
दार सुन्दरी बल खाती हुई, संगमरमर की गौरता को मर्दित

तारे

करती हुई, आकर कार के समीप खड़ी हो गयी। यौवन और रूप की उमंग उसके उभरे हुए गुलाबी अंगों से, बरसाती नदी की भाँति, अपनी विपुलाकार तरंगों में कल्लोलित हो रही थी।

मैंने अपने विभ्रम के साथ मचलते हुए अदब से सलाम किया और झुककर दरवाजा खोल दिया। वह धीरे-धीरे मदभरी चाल से आकर भीतर बैठ गयी।

मैंने यथासाध्य विनम्र होकर पूछा—कहाँ चलूँ सरकार !

उसने अपने कलकंठ की कलित भंकार में कहा—समुद्र की तरफ चलो।

मैं आकर अपनी सीट पर बैठ गया और मोटर स्टार्ट कर दी।

कोई ढाई घंटे घुमाकर मैं आठ बजे के करीब लौटा। सारा महल रंगविरंगी बिजलियों के प्रकाश में किसी अज्ञात मायापुरी की भाँति आलोड़ित हो रहा था। स्थान-स्थान पर बने हौजों और फुडारों पर जब इन रंग-विरंगी वस्तियों का प्रखर प्रकाश पड़ता था तो एक अपूर्व रंग-विरंगे, कल्पना के समान सजीले, इन्द्रजाल का सृजन हो जाता था। चारों ओर एक अव्यक्त मिहरन से भरी हुई कोमलता छायी हुई थी। मैंने उतरकर कार का दरवाजा खोल दिया। रानी साहब एक तेज निगाह से मेरी ओर देखती हुई उतर पड़ीं। उनकी उस निगाह में एक विचित्र प्रकार का सूक्ष्मतम द्रव-प्रकाश-सा भरा था।

इसके बाद मैंने देखा, रानी साहब मेरे प्रति विशेषरूप से आकर्षित हो रही हैं। नित्य जब वह मेरे साथ घूमने जातीं तब मुझसे दो-एक बार इधर-उधर की बातें करके मुझे एक प्रकार के उद्दाम प्रकंपन से भर देतीं। मैं अपने को बड़ा

तारे

भाग्यवान्, बड़ा सौंदर्यशाली और कांतिपूर्ण समझने लगता । कभी-कभी तो मेरा हृदय कल्पना-पथ पर बहुत आगे बढ़ जाता था, और मायामरीचिका के क्षितिज के उस पार सुन्दर नक्षत्रलोक में नवोदित तारिका-सी लालसा मेरे हृदय को तीव्रतम आघातों से- कुछ-कुछ अपरिचित मनोवेगों से भर देती थी । मेरी अंतर्वासना की पिपासा जागृत हो उठी थी, और मैं एक प्रकार के भ्रमजाल में अर्धपागल-सा भटकने लगा ।

धीरे-धीरे रानी साहब मुझसे सभी तरह की बातें करने लगीं । मेरा घर कहाँ है, घर में कौन-कौन हैं, कितने भाई हैं, कितनी बहनें हैं, कितने दिन से मैं कलकत्ते में हूँ, कहाँ पढ़ता था—आदि बातें भी वह मुझसे बड़े ही नवनीतोपम अनुराग से पूछतीं । मैं भी उनका उत्तर देता और अपनी उद्बेलित भावनाओं का दंशन करने में एक विचित्र अन्तर्वेदना का अनुभव करता । एक दिन जब रानी साहब ने उसी प्रकार पूछा कि मैं विवाहित हूँ या अविवाहित, तो मैं कुछ विशेष कठिनाई का अनुभव करने लगा । क्या उत्तर दूँ, यही न समझ पाया । यद्यपि मैं विवाहित था और मेरे एक लड़की भी थी, फिर भी न-जाने किन अनजान लालसाओं से आश्वासित होकर कह बैठा—“नहीं सरकार, मेरी शादी अभी नहीं हुई ।”

इसके बाद रानी साहब ने एक भी प्रश्न न पूछा । चुपचाप सुमौनता में लीन बैठी हुई चारों ओर देख रही थीं । मैंने किंचित् साहस करके उनकी ओर देखा । उफ़ ! मैं तो देखकर मूर्च्छित-सा होने लगा—उनके लाल-लाल गुलाबी अधर फड़क-से रहे थे और वह अपने कंपन से बाहर निकलकर एक अनिर्वचनीय सुंदरता की मधु पुलकावली में उद्बेलित हो

तारे

रही थीं । मैंने देखा—उनके सुंदर मुख पर एक अव्यक्त विपाद छाया हुआ था, जो और भी प्यारा मालूम होता था ।

भाई, साफ बात तो यह है कि मैं उन दिनों अपने को असाधारण सुंदर समझता था । विद्यासागर-कालेज में जब मैं था, तब वहाँ के पूर्ण स्वस्थ और सौंदर्य-पूर्ण युवकों में गिना जाता था ; फुटबाल और हाकी का नामी खिलाड़ी था और मुझे यह विश्वास था कि मैं किसी गर्वशील और मानिनी बालिका को भी कुछ क्षणों के लिए आकर्षित कर सकता हूँ । मैं बहुत दिन तक अपने इसी सौंदर्य-यौवन-मद में भूमता हुआ कलकत्ते की सड़कों में घूमा करता था । पिताजी की आकस्मिक मृत्यु और जीविका-उपार्जन की चिंता ने इस मद को दवा तो दिया था, परंतु मोहनी मोहिनी का यह अनुराग और आकर्षण देखकर मैं न-जाने उनमें किस-किस देवदुर्लभ, अप्राप्य, स्वर्गीय और अलभ्य वस्तु की आशा करने लगा । मैं दो वर्ष से कलकत्ते में रहता था ; यह भी जानता था कि अधिकांश धनकुवैरों की असली हालत क्या है । ये काम-अतृप्त, प्यासी, तृष्णातुर और यौवन की उद्दाम उच्छृंखलता से प्रेरित भावुक बालिकाएँ—जो शुष्क, शिथिलप्राण, मृत्यु की भाँति ठंडे धनिकों के साथ केवल रुपयों के—हीरों के नेकलेस और इयररिंग के—बनारसी साड़ियों और पेरिस की हेज़लिन तथा क्रीमों के—खस और लेवेंडर की रूहों और स्वर्ग की अप्सराओं के लिए भी दुर्लभ नाना प्रकार की उद्दीपक शृंगार-सामग्रियों के प्रलोभन में ही रहती हैं—किस प्रकार के जटिल गुप्त रहस्य-चक्रों में अपना जीवन और यौवन की मतवाली घड़ियाँ बिताती हैं, इसके काफी किस्से भी मैंने

तारे

सुन रखे थे । मैंने यदि अपने को इसी रूप में देखा और एक परम अलभ्य वस्तु की कामना की, तो कोई असंगति न थी । इसलिए यदि मैंने मोहिनी के व्यवहार को उस अर्थ में लिया, तो उसमें मेरी गलती न थी । फिर मैं तो सुन्दर और पूर्ण स्वस्थ युवक था ।

... इसके बाद तो यहाँ तक नौबत आ गयी कि मुझे जब चाहतीं, तब रानी साहब बुला लेतीं और बड़ी देर तक बातें करतीं । मैं उस समय एक देवदुर्लभ सुख की सम्भावना से अभिभूत होकर इन्द्रधनुष की भाँति बादलों पर नाचने लगता । मेरी अंतर्वासना की पिपासा और भी भड़क उठती और मैं उन क्षणों की कल्पना में विभोर हो जाता ।

एक दिन शाम को रानी साहब ने स्वयं आकर मुझसे कहा — “ड्राइवर, आज तो मैं सिनेमा देखने जाऊँगी । मदनथियेटर्स ले चलो ।” मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ । मैंने कहा—आज ही मेरे भाग्य की परीक्षा हो जायगी । यदि सचमुच यह मुझे चाहती होंगी—मुझसे किसी प्रकार की आशा करती होंगी, तो मुझे भी साथ बिठाकर सिनेमा देखेंगी । रानी साहब को बिठाकर मैं चल दिया । जब सिनेमा-हाउस के पास पहुँचा, तो रानी साहब ने कहा—लो ड्राइवर, दो आरचेष्ट्रा के टिकट ले आओ । और, यह कहकर मुझे सौ रुपये का एक नोट दिया । मैंने कहा —“सरकार, दो क्यों ?” उन्होंने कहा—“क्यों, तुम क्या करोगे यहाँ बैठकर । चलो, तुम भी वहीं बैठकर देखना ।” मेरे पैरों में जैसे किसी ने पंख लगा दिये हों, मैं हवा में उड़ता हुआ टिकटघर की ओर चला । अब मुझे अपने जीवन की सफलता पर अविश्वास करने का कोई आधार न

तारे

रह गया । मैं मोहिनी की नज़रों में गड़ गया हूँ, और वह मुझे अपना अन्यतम सखा बनाना चाहती है—यह सत्य आकाश की भाँति मेरे सामने नाचने लगा । मैं जाकर दो टिकट ले आया और उधर से एक गुस्ताखी और करता आया, यानी रानी साहब के बिना माँगे ही आइसक्रीम सोडा की बोतल, बरफ़, पान आदि भी लेता आया । पहले तो कुछ संकोच हुआ कि शायद रानी साहब नाराज़ हों । परंतु फिर एक अदृश्य प्रेरणा ने आकर हृदय में बहुत-सा साहस भर दिया । रानी साहब ने कहा —तुम भी पीओ । मैंने नम्रतापूर्वक, मगर कुछ धृष्टता से, मुस्कराते हुए कहा —“मैं पी आया हूँ, आप पीजिए ।” उन्होंने कुछ न कहकर नज़ाकत के साथ गला सहलाते हुए पी लिया । फिर मुझे गिलास देकर पान खा लिये । इसके बाद हम लोग ऊपर आरचेष्टा में गये । खेल शुरू होने में अभी दस-बारह मिनट की देर थी । मैं कुछ हटकर दूसरे बाक्स पर बैठा था । सोचता था कि वह स्वयं या तो मेरे पास चली आयेंगी या मुझे अपने पास आने के लिए कहेंगी । परंतु उन्होंने ऐसा न किया । मैं वहीं बैठा रहा ।

एक सामाजिक फ़िल्म था । कथानक दुःखान्त था । हमारे यहाँ फ़िल्मों में दुःखान्त कथानक कम देखने में आते हैं । परंतु यह दुःखान्त ही कथानक था । पारिवारिक जीवन के सुंदर अलौकिक ज्योतिर्मय प्रेम के दृश्य दिखाये गये थे । भाई-बहन का सुन्दर प्रेम दिखाया गया था, परंतु दुःखान्त होने के कारण बहुत ही कारुणिक दृश्य हो गया था । लोग करुणा में विगलित-से हो गये । मैंने देखा, मोहिनी भी बड़े मनोयोग के साथ फ़िल्म देख रही है । क्षण-क्षण में उसके चेहरे पर एक

एक सौ बारह

तारे

नया भाव आता था और चला जाता था। मैंने स्पष्ट देखा कि वह कुछ उदास हो गयी है और उसके मतवाले गुलाबी नेत्र भर आये हैं। सहसा दीख पड़ा, उसके नेत्रों से टप-टप आँसू गिर रहे हैं.....

जब खेल खत्म हुआ तो हम लोग चले आये। मैं जान गया कि यह बड़ी भावुक है और इसका हृदय संवेदनशील है। उस दिन मैं फ़िल्म की बातों पर और उसकी उस विचित्र भंगिमा पर ही विचार करता रहा। किंतु वे गुलाबी कल्पनाएँ, एक बार झलक दिखाकर फिर दिमाग में न आयीं।

इसके बाद दो-तीन दिन तक कोई खास बात नहीं हुई। उसका व्यवहार वैसा ही बना रहा और वह उसी प्रकार माया-मरीचिका से विलसित अपने ज्योतिर्द्वार पर मुझे ठहराये रही। मैं भी लालसाजनित आकांक्षा-प्रसूत आघातों को सहता हुआ वहीं खड़ा रहा। मैं इस स्वयंदृष्टिका के आमंत्रण की प्रतीक्षा कर रहा था। सहसा उन्हीं दिनों मुझे अपनी छोटी बहन के पति का तार मिला। वह मृत्युशय्या पर थी और अन्तिम दर्शन के लिए मुझे बुलाया गया था। मैं अपनी इस बहन को बहुत प्यार करता था। हम दो-तीन भाइयों के बीच में यही बहन थी और मुझमें दो ही तीन साल छोटी थी। उसकी रूग्णता का तार पाकर मैं अत्यंत व्याकुल, चिन्तित और क्षुब्ध हो उठा। मैंने सोच लिया कि हर हालत में अभी इसी क्षण पटने के लिए रवाना हो जाऊँगा। तुरंत ही अपना सामान ठीक करके ऊपर रानी साहब के पास आज्ञा लेने चला गया। मुझे देखते ही उन्होंने अपने कलकंठ की मधुर भंकार में कहा—कहो, क्या काम है ?

एक सौ तेरह

तारे

रानी साहब इस समय कुछ उदास-सी थीं। उनके प्यारे-प्यारे लावण्यपूर्ण मुख पर करुणा की एक प्रियतम धारा उमड़ रही थी। मैंने कहा—“सरकार, मैं इसी क्षण जा रहा हूँ। पटने से मेरी बहन की बीमारी का तार आया है। आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। इसके बाद यहाँ से सीधे सेठ साहब से मिलता हुआ स्टेशन निकल जाऊँगा। यह देखिए तार।”

रानी साहब ने उत्सुक और कुछ उत्कंठित-सी होकर तार मेरे हाथ से ले लिया। मैंने देखा, तार पढ़कर वह और उदास हो गयीं। बोलीं—इससे तो मालूम होता है कि ज्यादा बीमार है!

मैंने उद्विग्न और व्याकुल होकर कहा—“हाँ सरकार, तार से तो यही जान पड़ता है। देखिए, ईश्वर मालिक है। मेरे भाग्य में अन्तिम दर्शन बदा है या नहीं, कौन जाने।” यह कहते-कहते कब मेरे नेत्रों की कोरें भर आयीं, यह मैं न जान पाया। परंतु मैंने कुछ आश्चर्य से देखा कि उनकी आँखें भी डबडबा आयी हैं।

मैंने कहा—अच्छा सरकार, मुझे हुक्म दीजिए। मैं जाऊँगा।

उन्होंने हाथ के इशारे से मुझे ठहरने के लिए कहा और भीतर से सौ-सौ रुपये के दो नोट लाकर मेरे हाथ में रख दिये। मैंने कुछ विस्मित-सा होकर कहा—“सरकार, मैं अपनी तनख्वाह सेठ साहब से जाकर ले लूँगा। यहाँ लेने का मुझे हुक्म नहीं है।”

मोहिनी की आँखों में सचमुच पानी भरा हुआ था और वह पानी भी कितना आकर्षक, मोहक और सुंदर था। उसने भरे हुए कंठ से कहा—केदार, (उसने शायद आज ही पहलेपहल मेरा नाम लिया था, अन्यथा वह डाइवर

तारे

कहकर ही बुलाती थीं) तुम लोग समझते हो कि मैं वेश्या हूँ ; वेश्याओं के हृदय नहीं होता । परंतु तुम्हें मालूम होगा कि अधिकांश वेश्याएँ जन्म से ही वेश्या नहीं होतीं । उनमें से अधिकांश इस जीवन के पहले एक दूसरा ही जीवन बिताकर आती हैं । उनका भी एक इतिहास होता है—उनके साथ भी कुछ अतीत की मधुरतम, स्नेहस्निग्ध और प्रेमो-ज्ज्वल स्मृतियाँ होती हैं । उस संसार को, जिसमें होकर वे इस मायाजगत् में आती हैं, एकदम भूल नहीं जातीं । उनके हृदय में भी मधुर विशुद्धतम जीवन की कोमल स्निग्ध भावनाओं का स्वाद लेने की अभिलाषा उत्तेजित होती है । तुम्हें सुनकर शायद विश्वास न हो..... मेरे भी एक भाई था । बिलकुल तुम्हारे ही समान उसका मँह था—ऐसा ही डीलडौल और चेहरा—ऐसी ही गढ़न—ऐसी ही बोली, ओह, वह मुझे कितना चाहता था, और मैं उसे कितना प्यार करती थी.. कहते-कहते मोहिनी की आँखों से दो बूँद आँगू टप-टप कर वहीं ज़मीन पर गिर पड़े ।

मैं शून्य भाव से उसकी ओर देख रहा था, परंतु मेरा सारा हृदय टीसों से छिद-छिदकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानों लहलुहान हो गया था ।

उमने उसी भाव से कहा—मैं दुष्टों के प्रलोभनों से लालायित और अपने मद में चूर होकर, उस संसार को छोड़ कलकत्ते की ऐश्वर्यपूर्ण सड़कों पर आकर यह चकाचौंध करनेवाला भोग-विलास का अलस मंथर जीवन बिताने लगी ; परंतु क्या मैं अपने उस स्मृति-अवगुंठित अप्राप्त और माधुर्य-स्निग्ध जीवन को भूल सकी ? जब कभी भाई-बहनों की याद

तारे

आ जाती है, तो कलेजे में एक अजीब कसक—एक तीव्रतम आघात पहुँचता है। तुमको देखकर मैं वास्तव में बहुत चंचल हो उठी थी। बिलकुल मेरे भाई की प्रतिमूर्ति—सी तुम प्रतीत होते हो। तुमको देखकर ज्ञात होता है जैसे वही आ गया है। तुम्हारे साथ, मेरी किशोरावस्था की वे चंचल लीलाएँ एक बार फिर सजीव और साकार हो उठती हैं। इसीलिए कभी-कभी इच्छा होती है कि लगातार तुम्हें देखती ही रहूँ। न-जाने क्यों इससे हृदय को एक प्रकार की शीतलता का बोध होता है। जिस दिन से मैंने तुम्हें देखा है, उसी दिन से मैं तुम्हारे प्रति जिस प्रेम और मधुर भावना-जनित आकर्षण का अनुभव कर रही हूँ, मेरा हृदय ही जानता है।

मैं अवाक् खड़ा था। निष्कंप दीपशिखा की भाँति मेरा हृदय जल रहा था। मेरे हृदय पर जैसा भयानक और घातक आघात लगा, उसकी ज़रा तुम कल्पना तो करो। मेरा हृदय उसी आवेग की तीव्रता से, उसी आघात की प्रचंडता में अभिभूत होकर क्षत-विक्षत-सा हो गया था, और मैं वहीं खड़ा रहा। मेरे हृदय का पाप, मेरी आत्मा का अभिशाप मुझे खाँसे डालता था। मैंने एक बार उसे देखा—मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे वह देवज्योति की भाँति आकाश में ऊपर उठी जा रही है, और मैं—मैं तो.....

सहसा उसने फिर कहा—तुम जाओ। तुम्हें देर हो रही है। अभी सेठ साहब के यहाँ भी जाना होगा। ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। ये रुपये तुम्हारे खर्च के लिए हैं। परमात्मा चाहेगा तो तुम्हें तुम्हारी बहन अच्छी हालत में मिलेगी।

मैंने दोनों नोट जेब में रख लिये और न-जाने किन अज्ञात,

एक सौ सोलह

तारे

अलौकिक भीम भावनाओं से प्रसूत प्रेरणा से संचालित होकर उसके दोनों पैर पकड़ लिये । मैंने देखा, इसमें एक प्राण-संचारी आलोक है जो मेरी आत्मगतानि को—तिमिराच्छन्न मानस-पटल को उज्ज्वल कर रहा है । उसने हड़बड़ाकर मुझे उठाकर खड़ा कर दिया

इसके बाद ही मैं वहाँ से चला आया और फिर आज तक लौटकर वहाँ नहीं गया । न-जाने दिल में कैसी कचट उठती है—कैसी मसोस पैदा होती है, जब इन बातों की याद आ जाती है । फिर बहन के अच्छे हो जाने के बाद भी लौटकर वहाँ जाने की हिम्मत न पड़ी । न-जाने क्यों अंतर्दाह की उग्र ज्वाला उधर जाने ही नहीं देती । अपने पाप की—अपने मलिन विचारों की भीम भावना—अपने कलुष की स्मृति, हृदय के एक-एक कंपन को आत्मदाह के आवेग-प्रवेगों से भर देती है ।

कहानी समाप्त करने-करते उसने कहा—वात यह है कि हम इतने पतित और नीच हो गये हैं कि हमारी आँखें वासना और कलुष की ही खोज में चारों ओर घूमती हैं । किसी बालिका को अपनी ओर कुछ आकर्षित होते देखकर हम यही समझते हैं कि वह हमारे ऊपर मोहित होकर हमसे प्रेम की भिन्ना माँग रही है । हम अपने ही विचारों की मलिनता और पाशविकता का प्रतिबिम्ब चारों ओर देखते हैं । और, ये वेश्या-बालिकाएँ, जो पतन और व्यभिचार के भयंकर समुद्र में फेनों की भाँति डूबती-उतराती हैं, इतनी हेय और भावशून्य नहीं होतीं जितनी हम समझते हैं । वे (भी) अपने रमणीत्व को नहीं विसर्जित कर सकतीं । वे भी कभी-

तारे

कभी एक सहोदर भाई, स्नेहशील माता-पिता और एक प्राणपुत्र के लिए व्याकुल हो उठती हैं । वे भी कभी-कभी एक सती के समान किसी पुरुष के चरणों पर अपनी एकमुखी भावनाएँ बिखेर देना चाहती हैं । पर हमारा सदाचार, हमारा पुरुषत्व, हमारा विवेक इतना मुर्दा और प्राणहीन हो गया है कि हम अपनी अंतर्वासना की पिपासा में ही उद्भ्रान्त रहते हैं । संसार में हममें कोई इसके अतिरिक्त और भी किसी प्रकार की आशा कर सकता है, यह हम सोच ही नहीं सकते । हमारी यही दुर्बलता हमें जिस नारकीय खड्ग में तोपे दे रही है, उसमें हम न-जाने कब तक पड़े सड़ते रहेंगे ।

मैंने देखा -- कहते-कहते जैसे वह कुछ उत्तेजित हो उठा ।



प्रेम का पाप

प्रेम का पाप

(क)

“बंदी !”

“आज्ञा ?”

“क्या कर रहे हो ?”

“कुछ तो नहीं । जीवन के क्षण-क्षण में बिगरे हुए मूनेपन को प्यार करना सीख रहा हूँ ।”

“तुम तो बड़े भावुक प्रतीत होते हो ।”

“भावुकता क्या राजों-महाराजों की ही सम्पत्ति है ? क्या दीनों का उस पर कुछ भी अधिकार नहीं है, कुमारीजी !”

“क्यों नहीं—अवश्य है !”

एक सौ इक्कीस

तारे

“तो फिर, कुमारीजी, यदि मैं इस अनन्त सुनील अम्बर की ओर देखकर एक आह भरकर रह जाता हूँ—स्वर्ण-रहस्य प्रभात की किरणवेला में हृदय थामकर उठते हुए उच्छ्वासों को रोकने की असफल आकुल चेष्टाएँ किया करता हूँ, तो क्या बुरा करता हूँ । क्यों, क्या स्वप्नों की रंगीन मधुकल्लोलित संध्या की ओर भर नेत्र देखने का अधिकार भी कैदियों से छीन लिया जाता है ? क्या मैं यही समझूँ कि अंगग-कुमारी ज्योत्स्ना वही छीनने के लिए यहाँ पधारी हैं !”

“बंदी ! तुम कितने निर्मम हो—कितने कठोर और हृदय-हीन !”

“कुमारीजी ! हृदय से हीन तो पहले नहीं था । परन्तु आज कई दिनों से देख रहा हूँ, इन दुर्दिनों में कदाचित् वह भी इतनी अवहेलना—इतना तिरस्कार न सह सकने के कारण मुझ भाग्यहीन को छोड़कर न-जाने कहाँ भाग गया है ।”

“तब तो, बंदी, तुम भाग्यहीन नहीं हो !”

“कुमारीजी, रह-रहकर न-जाने कौन प्राणों में कंपन भरकर, कल्पना में उन्माद बिखेर कर यही कह देता है । न-जाने प्रकाश की कौन-सी रेखा—सुपमा की कौन-सी पथभ्रान्त किरण—आलोक-पथ से भूली हुई भटकती हुई तारिका मेरे प्राणों में उदित होकर एक हर्षपुलकाकुल अज्ञात मधु आश्वासन दे जाती है ।”

“फिर भी बंदी, तुम कहते हो, मेरा जीवन एकाकी और सूना है !”

“कुमारीजी ! उधर देखिए । चंद्रिका-धौत गगनमण्डल की ओर । यौवन की उद्दाम प्रवृत्ति की रंगभूमि—प्यार की गोद में

तारे

खेलती हुई तारक-बालिकाएँ अपने राशि-राशि सौन्दर्य से भारानत भुकी जा रही हैं, परन्तु इनका हृदय कितना सूना है, निष्कम्प दीपशिखा-सी इनकी दृष्टि में कितना सूनापन है। युग-युग से इनकी आँखें नैश जागरण से उलभी हुई है। दिन भर स्वर्गगा के स्वर्ण-किरण-कल्लोलित नीड़ में ये पड़ी दुबकी रहती हैं और रात होते ही अपलक, निस्पन्द नयनों से किसी की बाट जोहा करती हैं। आह ! जिस समय प्रतीक्षा की पलकों में सबेरा भर आता है उस समय आपने उनकी सजल, निराश और आकुल आँखें देखी हैं, कुमारीजी ! इनका यह अनन्त सूनापन कहाँ से आकर भर गया है। प्रिय-पथ पर सिसकती हुई समीर की श्वासहिलोरों से, उत्ताल जलधिवेला में अदृश्य प्रिय से लिपटनेवाली और निराशा के पापाण-तट से टकराकर अपने ही में बिखर जानेवाली लहरों से पूछिए-सूनेपन की किस मधुरतम गोद में उनका लालन-पालन होता है ? भला विश्व में कौन ऐसा है, जिम्मे हृदय के किसी अज्ञात कोने में सूनापन न छाया हो ?”

“भला यह सूनापन आता कहाँ से है, बंदी ?”

“यह न पूछिए, कुमारीजी ! न-जाने हृदय के किस अज्ञात अतल अन्धकारपूर्ण कोने में दुबका पड़ा रहता है और अवसर पाते ही सजल नवसावन घनों की भाँति उमड़-धुमड़कर धिर आता है।”

“तो बंदी ! तुम्हारे उर में भी कहीं कुछ सूना है।”

“.....”

“बोलो ! क्या सोच रहे हो तुम ?”

“कुछ नहीं, सोच रहा था कि इस प्रश्न में कितनी मिठास,

तारे

कितना मधु, कितना रस है। यह प्रश्न कितना प्याग मालूम होता है। इसी रस को पी जाने का उपक्रम कर रहा हूँ।”

“परन्तु तुम्हारे उर में भी कुछ सूना है, यह तो तुमने बताया ही नहीं।”

“बार-बार इस प्रश्न को छेड़कर मुझे कितना सुख पहुँचा रही हैं आप ! यह मेरा हृदय ही जानता है। कुमारीजी ! कितना सौभाग्यशाली होता, यदि कोई प्रतिक्षण निरन्तर यही प्रश्न पूछता रहता और मैं उसे पीकर, अपने हृदय के स्पन्दन को दोनों हाथों से थामकर इसी तरह मौन रहता।”

मुकेशिनी की चंचल मुक्त वेणी की भाँति मचलकर कुमारी ने फिर कहा—“यह तो तुमने बताया ही नहीं ”

“यह आप क्यों पूछती हैं, कुमारीजी ?”

“ऐसे ही”

“क्या बताऊँ, कुमारीजी ! मेरे हृदय में काल के समान असीम, सुनील गगन के समान मुक्त और स्वप्नों के समान चंचल सूनापन भरा है, आपके प्रश्न से मुझे इतना सुख मिलता है कि वह सूनापन और भी सुनहला एवं मादक प्रतीत होने लगता है। वह सूनापन कब भरेगा, जीवन-रसाल की डाली पर कब कोकिल कूकेगी, सूखे पत्तों से कब दक्षिण-पवन खेलेगा, शरत् में कब शेफालिकाओं का नृत्य होगा, गगन में छाये हुए काजल-से काले-काले मेघों से कब मधुरस की वर्षा होगी, इन टेढ़ी-मेढ़ी कनक-रेखाओं में कब वही चिरपरिचित दामिनी दमकेगी, इस अतीत की भाँति स्मृति-सी फैली हुई राशि-राशि अधियारी में कब पूनों की रात

तारे

खिलेगी—वही पूनों जिसे मेरे प्राणों की एक-एक चितवन पहचानती है—, कह नहीं सकता । ... परन्तु तुम कितनी मधुर और सरल हो, कुमारी ! सुपमा और स्नेह के शीतल घन तुम्हारी लहलही लता पर मँडरा रहे हैं । विनकुल तुम्हारी ही प्रतिमूर्ति वह थी—ऐसी ही सरल और भोली, स्पंदनशील अधरों-सी चंचल, किशोरी की खुली हुई मुक्त बेणी की भाँति प्रसरणशील ! कुमारीजी, क्षमा कीजिए मेरी धृष्टता को, आपकी एक-एक चेष्टा में, एक-एक भंगिमा में मैं, उसी सुपमा की छवि देखता हूँ । आपके एक-एक शब्द में मुझे वही रस-पराग मिलता है, आपके मृदु स्वरों को देखकर उसके गंगाजल से भीगे हुए नेत्र स्मृति-नाट्यमंच पर मँडराने लगते हैं । कुमारीजी ! यदि किसी दिन आपकी ओर निर्निमेष दृष्टि से कुछ देर तक देखता रहूँ, तो क्षमा कीजिएगा । मुझे आस है उसी मूर्ति का आवास दिव्यायी देता है... ”

(ग्व)

अपने महल के पार्श्ववर्ती उपवन में कुसुमों के परागकणों से धूसरित संगमरमर-पथों पर अंगराग-देश की राजकुमारी ज्योत्स्ना अपनी प्यारी सखियों के साथ टहल रही है, मानों सौन्दर्य की रंगीन लहरें सौरभसर में तिर रही हों । रात्रि के समय लड़खड़ाता हुआ दक्षिणपवन आता है—फैली हुई जूही, चमेली और रजनीगंधा की लताओं से छेड़छाड़ करता है और मादक नशीले आवेग से भारान्त हो वहीं लोट जाता है । चन्द्र की हिमकिरणें स्वप्नों की भाँति निशा के अंचल में बिखरी पड़ी हैं ।

एक सौ पच्चीस

तारे

सहसा एक गुलाब का फूल तोड़कर उसकी मकरन्दभरी अरुणिमा को अपने अधरों से लगाते हुए कुमारी ने एक सखी के स्कंध पर हाथ रखकर कहा—“क्यों री मालती ! तूने कभी प्यार किया है ?”

राजकुमारी ने अभी यौवन के मधुवन में प्रथम चरण ही रक्खा था । एक कोमल मूर्च्छना की लालसा रह-रहकर उसके प्राणों में मीठी सिहरन, अधरों में उन्माद कम्पन भर देती थी । उसके मानस की कुमुदवालाँ अपलक थरथर पुलकावली के झरोखों से अदृश्य अज्ञात प्रियतम मुखचन्द्र को निहारा करती थी ।

मालती राजकुमारी की मुँहबोली और सबसे प्यारी सखी थी । उसके अनिन्द्य सौन्दर्य और चाँदनी के समान सरल स्वभाव पर मुग्ध होकर राजकुमारी ने उसे अपनी सखियों में रख लिया था । वह प्रभात की धूमिल तारिका की भाँति उदास थी । उसकी सरल तरल आँखों में विपाद की एक पतली-सी रेखा थी । उसका मलीन, उदास सौन्दर्य करुणा के आवरण से लिपटकर और भी शृंगारपूर्ण हो गया था । वेदना के मकरन्द-मोतियों से भीगी हुई उसकी चितवन-लता में अभाव के फूल फूल रहे थे—उसके निरीह एकाकी और रीते नेत्रों में हृदय को मसोसनेवाली वेदना की साकार कसक थी जो चलचित्रों की भाँति सजीव थी ।

मालती ने अपने नत नयनों को ऊपर उठाकर विपादभरे स्वर में कहा—“हम लोग प्यार करना क्या जानें, कुमारी ! गरीब भी कहीं प्यार किया करते हैं !”

“क्यों, क्या गरीबों के दिल ही नहीं होता—दिल में

गोपन—लालसाएँ नहीं होतीं—लालसाओं में कभी कंपन—
सिहरन नहीं होती, जो तू ऐसा कहती है ?”

“कुमारी ! गरीबों के लिए प्यार करना पाप है और उसे प्रकट करना तो महापाप ही है । उन्हें आह भरने की आज्ञा नहीं है, रोने का हुक्म नहीं है । आँसुओं को उन्हें पीना पड़ता है, कराहों को दवाना पड़ता है, दिल को मसोसना पड़ता है । घायल के लिए तड़पने का प्रबन्ध नहीं ! गरीबों के लिए प्यार एक हाहाकार — एक अभिशाप — एक विडम्बना है । फिर भी अभागा हृदय ...”

“हाँ, क्या कहा—अभागा हृदय, क्या ?”

“यही कि अभागा हृदय न-जाने क्यों नहीं मानता ?”

“क्या नहीं मानता ?”

“यौवन की अरुण उषा में—किरणों की रक्तिम अनुराग-भरी बेला में किसी के ऊपर सर्वस्व लुटा देने की कल्पना कितनी मीठी और मादक होती है, किसी के कंपित अधरों की बहकानेवाली बातें कितनी सरस और सुहावनी प्रतीत होती हैं, किसी की याद में कुमुदिनी के समान सजल नेत्रों में आँसुओं के मोती-मकरन्द पिरोना कितना भला मालूम होता है । कसक के उन क्षणों में क्या होता है, क्या नहीं होता है । यौवन की स्वप्नमयी रंगीन गुलाबी तन्द्रा से अलसाये हुए हृदय का प्रवल और मूक अज्ञान—सौन्दर्य की आत्मविस्मृति—जीवन को पतन, विनाश और विध्वंस की जिस चिरकारा में बन्द कर देती है, उस समय वह कितनी मधुमय प्रतीत होती है ।”

“परन्तु, मालती ! लोग प्रेम क्यों करते हैं ? क्या प्रेम

तारे

करना इतना आवश्यक और नैसर्गिक है कि उसके बिना जीवन ही न व्यतीत हो सके ?”

“कुमारी ! इसका उत्तर मैं क्या दूँ ? परन्तु हाँ, इतना जानती हूँ कि जब तक फूल खिलेंगे, चाँदनी फैलेगी, गन्धवाह वाहन समीर बहेगा, कोयल कूकेगी, ऋतुराज अपनी को सौरभ से भरेगा, जब तक सावन आवेगा, काले-काले मेघ छावेंगे, मधु की नन्हीं-नन्हीं बूँदें गिरेंगी, चंचला मेघपरी की अलकों में आँखमिचौनी खेलेंगी—जब तक उर में स्पंदन होगा—नाड़ियों में कम्पन रहेगा, तब तक प्रेम का प्रसार होगा । लोग प्रेम करेंगे, एक दूसरे पर मरने की भावना को प्यार करेंगे । कुमारी ! जब तक उपा के अवरों की नीरव रागिनी—तारा-बलियों की हँसी सुनील गगन में मुक्त होकर उड़ेगी, तब तक तुम किसी को प्रेम करने से रोक न सकोगी । कुमारी ! कभी पवन का स्पर्श पाकर हर्षपुलक से फूटकर खिलती हुई किसी नवकलिका को देखा है ? उस समय हृदय में कैसी अयाचित उत्तेजना होती है, उसकी अनुभूति की है ?”

“हाँ, मालती ! बड़ी सुकुमार अनुभूति होती है ।”

“मैं देखती हूँ, आजकल कुमारी प्रेमचर्चा के लिए बहुत उत्सुक रहती हैं । (मुस्कराकर) जीवन के इस प्रथम वसन्त में ऐसा होना स्वाभाविक ही है ।”

लज्जा की कनक-किरण उँगलियों ने चपलता के साथ कुमारी के दगों को ढक लिया और मालती के प्यारे कपोलों पर धीरे से एक मीठी चपत मारकर कहा—दुर पगली ! तू बड़ी चंचल हो गयी है । इधर से कई कामिनी-कंठों से निकली हुई

तारे

हास्यकल्लोलों ने जा-जाकर उपवन के मध्यस्थित जूही-कुंज को घेर लिया ।

(ग)

“बंदी ! क्या सो गये ?”

“कुमारी ! अभी सोऊँगा ! सोना क्या अपने वश की बात है ।”

“अच्छे तो हो ?”

“अच्छा और बुरा होना भी अपने वश की बात नहीं है कुमारी !”

“ठीक तो कहते हो, बंदी.....”

“मैं—पराजित बंदी—विजयी देश की राजकुमारी से कोई बात बे ठीक कहूँ, ऐसा साहस मुझमें कहाँ ?”

“तो क्या बंदी, तुम मुझे इसी दृष्टि से देखते हो ?”

“देखता तो हूँ, कुमारी ! आप सिंहासन पर हैं, मैं धूल पर हूँ । धूल का एक-एक परमाणु क्या सिंहासन को किसी दूसरी दृष्टि से देखता है ?”

“तो तुम मुझे विजयी देश की राजकुमारी मानते हो ?”

“हाँ, कुमारी ! और, इसी में मुझे सुख भी मिलता है ।”

“परन्तु मुझे तो दुःख होता है, बन्दी । खैर, इसे जाने दो । हाँ, यदि मैं तुमसे कोई अनुरोध करूँ तो तुम्हें कोई नाहीं.....”

“नाहीं कैसी, कुमारी ! न-जाने सौभाग्य का कौन-सा कण अब भी मेरे जीवन से लिपटा हुआ है, जो आप मेरे ऊपर इतनी कृपा करती हैं—मुझे अपना स्निग्ध दर्शन देकर कृतकृत्य करती हैं ।”

एक सौ उनतीस

तारे

“तुमने उस दिन कहा था कि मेरे हृदय में कहीं कुछ सूना है।”

“हाँ, यह भूल तो मुझसे हुई थी।”

“परन्तु, तुमने उस दिन यह नहीं बताया कि यह सूनापन कहाँ से आया।”

“.....”

“आज मैं तुमसे यही जानना चाहती हूँ।”

“कुमारी ! यह अंधियारी रात, यह सन्नाटा, यह प्रकृति के उर का साँय-साँय स्पंदन ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मेरे अंतरतर का अंधेरा बाहर फूट निकला हो। मेरा सूनापन विश्व के कण-कण में बिखरा हुआ है। कुमारीजी ! इन अंधेरी सूनी एकाकी घड़ियों में बीते दिवसों के दुख-दर्द की कहानी न पूछिए तो अच्छा।”

“क्यों, बंदी !”

“इस सुख के क्षण-सी छोटी कोठरी में जो शान्ति - जो धुँधली-सी अर्थहीनता, जो सुमौनता-सी मिलती है, वह भी जाती रहेगी, और कदाचित्”

“घर के लोगों की याद आ जाय, क्यों ?”

“घर में कोई नहीं है, कुमारी ! माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-बहन—सबसे विहीन, अकेला ही विश्व की लांछना, अवहेलना और एकाकीपन का दुःसह भार ढोने के लिए छोड़ दिया गया हूँ।”

“तो, विवाह क्यों नहीं कर लेते ?”

“मैं तो सैनिक हूँ, कुमारीजी ! लड़ते-लड़ते ही मेरा जीवन बीता है और बीतेगा। अंगराग-नरेश और हमारे महाराज में

तारे

युद्ध हुआ, हमारी हार हुई, मैं बंदी बनाकर यहाँ लाया गया। तब क्या मैं कल्पना भी कर सकता था कि अंगराग-देश की राजकुमारी ज्योत्स्ना अपनी पद-रज से मेरी कोठरी को कृतार्थ कर मेरी सुखदुःख की अतीत कहानियाँ पूछेंगी ? मेरी कल्पना की ऊँची-से-ऊँची हिलोर भी शायद यहाँ तक नहीं पहुँच सकती थी। फिर भी यहाँ मुझे सुख है—सुख से मिलती-जुलती-सी अनुभूति है।”

“कौन-सा सुख है, बंदी ?”

“कुमारी ! जीवन में एक साध और रह गयी है। एक बार केवल एक बार इस कोठरी से मुक्त होकर यहाँ की सड़कों और गलियों में घूमना चाहता हूँ। यहीं उसका घर है—उसकी ससुराल है। उसके पति-पुत्र सब यहीं हैं। यहीं उसका ब्याह हुआ था, कुमारी ! वह मेरे हृदय की देवी, मेरे सूनूपन की रानी, मेरे प्रेम की प्रतिमा—सौभाग्य और अभाग्य दोनों की ज्वाला यहीं है, कुमारी ! इसीलिए जब मैं यहाँ बंदी बनाकर लाया गया, तब सोचा था कि कदाचित् सारा जीवन अब इस कारागार में ही बीतेगा। परन्तु यदि कुछ समय के लिए मुक्त हो सकूँ, तो.....”

“तो....”

“तो उसे खोज निकालूँ—उसके चरणों को एक बार और चूम लूँ। एक बार उसके गंगा की लहरों की भाँति पुनीत अंचल को आँखों से लगा लूँ—हरिणी की भाँति उसकी सरस आँखों में करुणा की कुछ बूँदें देख लूँ—यही मेरे जीवन की एक अभिलाषा और शेष रह गयी है। मेरा सारा जीवन इसी कारागार में बीतेगा जहाँ के पापाणों में कोई स्पंदन नहीं, जहाँ

एक सौ इकतीस

तारे

की दीवारों में कोई अनुराग नहीं..... । नहीं, मैं भूलता हूँ !
कुमारी ! बहुत भारी अनुराग—मुझे भारानत कर देनेवाला
राशि-राशि अनुराग बिखरा हुआ है . ”

“यह भूलने की आदत तुम्हारी बहुत पुरानी है क्या ?”

“नहीं कुमारी ! इस नवपरिचित सत्य को, जो इस कोठरी
में एकाएक अविज्ञानित कुसुम की भाँति खिल उठा है,
कैसे भूलूँगा ।”

“तो क्या तुम उसे देखना चाहते हो ? क्या तुमने उससे
प्रेम भी किया है ?”

“कुमारी, वह मेरे हृदय के एक-एक स्पंदन में ज्योति-
निष्कंप दीपशिखा की भाँति जल रही है—कल्पना की सुमन-
राशि में वनदेवी-सी खड़ी मुस्करा रही है। उसे एक बार—
एक बार क्या, युग-युग तक अपलक नयनों से निहारना
चाहता हूँ। और उससे प्रेम ? मैं क्या, जो उसे देखता है उससे
प्रेम करने लगता है। कदाचित् उसके हृदय के एक-एक मूक
स्पंदन में, नयनों की स्निग्ध सम्मोहन चितवन में प्रेम का मादक
प्रसार है। उन स्वर्ण-स्वप्नों को देखे न-जाने कितने दिन बीत
गये। आज तो यही प्रतीत होता है कि एक युग हो गया।
बचपन में ही अपने प्रेम से उसके सौन्दर्य को उद्भासित कर
देना मैंने अपना कर्तव्य-सा मान लिया था। बलि-बलि
जाता था, कुमारी ! परन्तु वह तो आकाशकुसुम थी, न
मिली ।”

“तो बन्दी ! क्या वह भी तुमसे प्रेम करती थी ?”

“भला यह मैं क्या जानूँ; परन्तु हाँ, मुझे हँसते देखकर
वह भी मुस्करा देती थी, मुझे उदास देखकर उसके दर्पण के-से

नेत्र न-जाने किस अज्ञात करुणा से भर आते थे। इसी से मैं समझता हूँ कि शायद वह मुझे प्यार करती है। जब मैं निराश, भग्न, आकुल दृष्टि से उसकी ओर देखकर अपने मौन अश्रुओं—अपनी वेदना के मकरन्द-मोतियों से और भी लिपट जाता था, तो स्पष्ट देखता था कि दद-सी शोले-सी एक मूक आह उसके अन्तराल से निकलकर अधरों पर बिखर जाती थी। जिस समय विवाह के बाद वह बिदा होकर यहाँ अपनी ससुराल आ रही थी, उस समय मेरी आँखों ने अपने सामने छाये हुए धुँधलेपन को भेदकर देखा था कि उसकी एक-एक चेष्टा रो रही थी। शराबी की भाँति डगमगाते—लड़खड़ाते हुए उसके डग बता रहे थे कि उसे अपने तन-वदन की सुध नहीं। उसके स्वर्ण-आलोड़ित अवगुंठन की ओट से वेदना भाँक रही थी। उसका रोम-रोम जीवन के इस व्यापार से विद्रोह कर रहा था। इससे बढ़कर दुर्भाग्य और सौभाग्य मेरे लिए क्या हो सकता है।”

अपने काँपते हुए, मचलते हुए हृदय के स्पंदन को बाँधकर कुमारी ने पूछा—“सच कहना, बंदी ! क्या कभी तुमने उसे भूलने की चेष्टा की है ? क्या अब भी तुम्हें उसकी याद आती है ?”

“उसे भूलने का उपक्रम तो किया था, परन्तु मैंने देखा, इससे अधिक मुख उस मीठी कसक और मधुभरी टीसों में है, जो उसकी याद में बिखरी रहती हैं। मैंने देखा, इस आहतपन में, इस एकाकी तड़पन में, इस दर्द में, इस वेदना में एक विचित्र आनन्द है, जो कदाचित् प्रिय के मिलन में, चुम्बन और आलिंगन में भी नहीं है, वरन् मुझे तो यह मालूम

तारे

हुआ कि इस व्यथा को भूलने का नाम ही यन्त्रणा है। हृदय की काली रात में यही तो एक आलोकरेखा है।”

“तो क्या वह यहीं है?”

“हाँ, कुमारी ? यहीं उसका विवाह हुआ है। आज कई वर्ष हो गये। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस कारागार में आना मेरे लिए एक पुण्य—एक वरदान है। यहाँ की समीर के एक-एक झोंके में मुझे उसी का श्वास-सौरभ बिखरा हुआ प्रतीत होता है। वायु की एक-एक लहर उसकी देहलता से लिपटी हुई आती है और मुझे उस सूखे सुख के गीले कंपन से भर देती है। चन्द्रिका का अमल धवल प्रकाश मानों उसी की देहकान्ति से विचुम्बित होकर इतना स्निग्ध फेनोज्ज्वल हो गया है। उसी के हृदय का एक-एक स्पंदन मानों उड़कर व्योम में नक्षत्र-सा चमक रहा है। उसी के स्नेह की रागिनी से यहाँ का कण-कण मुखरित हो रहा है, और आप—आप तो उसकी याद को और भी सजीव, सजल और मूर्तिमान् कर देनेवाली—उन आहत अनुभूतियों को प्रकंपित कर देनेवाली विश्व की अंतर्मुखी लक्ष्मी हैं.....”

(घ)

कुमारी ने रात्रि की श्याम सुमौनता को मुखरित करते हुए सीखचों के पास खड़े होकर कहा—“ बंदी !”

बंदी पड़ा हुआ करवटें ले रहा था। उसे नींद नहीं आ रही थी और कदाचित् वह सोना भी नहीं चाहता था। न जाने किन चिन्तित भावनाओं के साथ बैठा हुआ वह कल्पना के भूले में भूल रहा था। चिरपरिचित स्वर से चौंककर बोला—“कहिए कुमारीजी ! क्या आज्ञा है ?”

एक सौ चौतीस

तारे

“कल तुम इस कोठरी को छोड़कर चले जाओगे ?”

“हाँ कुमारी ! आज मालूम हुआ कि हमारे महाराज और अंगराग-नरेश में सन्धि हो गयी है जिसके फल-स्वरूप हम-जैसे कैदियों को छुटकारा मिल जायगा । कल ही हमें यहाँ से ले जाकर हमारे देश में पहुँचा दिया जायगा ।”

“तो आज तो तुम्हारी प्रसन्नता उमड़-उमड़कर तुम्हें भिगोये डाल रही होगी, बंदी ।”

“हाँ कुमारी, प्रसन्नता तो है, कुछ दुःख भी है ।”

“दुःख भला क्यों है ?”

“.....”

एक बार फिर अपने उत्तेजित हृदय के स्पंदन को बाँधकर कुमारी ने पूछा —“दुःख क्यों है ? बोलो, बंदी ।”

“कोठरी से न-जाने क्यों मुझे एक प्रकार का स्नेह—अनुराग-सा हो गया है । अब तो यहाँ का एक-एक पापाण भी मेरी करुण कहानी से परिचित हो गया है और मेरे ही साथ मानों हँसता है, रोता है, कराहता है, आह भरता है, मौन रहता है । इन पापाणों को छोड़ने में मुझे पीड़ा हो रही है, कुमारी । आपकी स्मृति भी अब अतीत की सुख-दुःखभरी कहानी—हर्ष-विपाद से धुली हुई गाथा बन जायगी ! यही सोचकर न-जाने क्यों पीड़ा होती है । आपने जब तब दर्शन देकर मेरे एकाकीपन के भार को हलका करने की जो कृपा की है, उसके लिए किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, समझ में नहीं आता कुमारीजी ।”

“बड़े निष्ठुर हो, बंदी, तुम ! जाते-जाते भी इतनी निष्ठुरता कर रहे हो । शायद तुम नहीं जानते....”

एक सौ पैंतीस

तारे

“सब जानता हूँ, कुमारी । सब समझता हूँ । परन्तु न-जाने क्यों विश्वास नहीं होता, मानों कोई स्वप्न देख रहा हूँ । क्या ही अच्छा होता, यदि जीवन भी इसी स्वप्न की भाँति होता और प्रभात की नवीन सुनहली किरणों के आने के पहले ही बीत जाता । बड़ा सुख होता । परन्तु इतना बड़ा मद् इस खाली प्याले में कैसे रख सकूँगा—इतना राशि-राशि सौभाग्य कैसे इस फटे, जीर्ण, क्षत-विक्षत उत्तरीय में बाँध सकूँगा ।”

“बन्दी ! मेरे अच्छे बन्दी ! मेरे सुकुमार बन्दी । कल तुम चले जाओगे—सदा के लिए । फिर तुम्हारी ये प्यारी-प्यारी बातें सुनने को न मिलेंगी । ओह, न-जाने क्यों हृदय फटा जा रहा है—कलेजा बाहर निकलने को मचला पड़ता है ।”

बन्दी के हृदय के किसी कोने में छिपे हुए संकुचित मोह ने कब फैलकर उसके हृदय को आर्द्र कर दिया, यह वह न जान पाया ।

“.....”

“बन्दी ! मेरे प्यारे बन्दी ! मेरे मोहन ! अब यह अग्नि-कोष—यह ज्वालामुखी नहीं रोक सकती । मेरे देव ! मैं तुमसे एक भीख माँगती हूँ, इन चरणों में क्या मुझे स्थान न मिलेगा ? इस ज्वाला को इतने दिनों से हृदय में दबाये रही—प्राणों के रस से इसे उकसाती रही—कलेजे से लगाये रही । सोचती थी कि सारा जीवन इसी प्रकार काट दूँगी—तुम तक इसे पहुँचने ही न दूँगी । परन्तु आज की रात केवल और है । कल मैं यहाँ होऊँगी—और तुम न-जाने कहाँ होगे । परसों मैं कहाँ होऊँगी—तुम कहाँ होंगे । इस विमुक्त

एक सौ छत्तीस

तारे

संसार में तुम वायु की लहरियों के साथ खेलते फिरोगे, और मैं यहाँ एकाकी जीवन का भार ढोया करूँगी ।”

बंदी अपलक, नीरव, अचल दृष्टि से देखता रहा—सुनता रहा । बीच में उसने शायद साँस भी नहीं ली ।

“मेरे देवेश्वर बंदी ! मेरे प्रियतम ! मेरे सुकुमार ! इस स्वप्न-सी फैली हुई शस्य श्यामला में, चलो, कहीं छिप जायँ । इस विस्तृत धरती में क्या हमें कहीं भी स्थान न मिलेगा । कितना सुन्दर जीवन होगा । बंदी ! एक-एक क्षण आवेगा और हमारे सौभाग्य के चरण चूमकर चला जायगा । हमारा यह चिर सौभाग्य कितना अमर और अविनश्वर हो उठेगा !”

“.....”

कहते-कहते कुमारी का कोमल कंठ भर आया । वह हाँफने लगी । बंदी ने दीपक के धुँधले प्रकाश में स्पष्ट देख लिया कि श्वासोच्छ्वास के आंदोलन से कुमारी का विशाल वक्षःदेश उठ-सा रहा है ।

परन्तु सहसा न-जाने कुमारी को कौन-सी याद आ गयी । शिथिल, निराशा की भाँति, कातर स्वर में बोली—“किन्तु मैं क्या-क्या कह गयी, बंदी ! न-जाने किस मदोन्मत्त आवेग में भूमने लगी । यह क्या सम्भव है, बंदी ? मेरे लिए अच्छा यही था कि इस ज्वाला को दबाये रहती । इन लोहे की छड़ों को देखो ! ये कितनी कठोर—ममत्वहीन हैं । सारा विश्व ही हमारे बीच में इन छड़ों की भाँति स्थित है । आज—केवल आज की रात और है, बंदी ! फिर तुम्हीं एक अभाव बन जाओगे—एक पीड़ा बनकर हृदय को वेधोगे । आज की रात, बस, यही सुख-दुःख से निखरी हुई अर्थहीन निराश कातर

तारे

रजनी। कल सब खत्म हो जायगा। कौन कहाँ होगा। फिर इस जीवन में ये अमूल्य—मोती से मुहावने क्षण मिलें, न मिलें ! आज की रात ! केवल आज की रात ।”...

कुमारी यह कहते-कहते शराबी की भाँति धम्म से वहीं जमीन पर बैठ गयी और दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा लिया। चंद्र की रुपहली किरणें आ-आकर उसकी देहकान्ति का आलिंगन करने लगीं।

×

×

×

बंदी ने अपनी झुकी हुई आँखें उठाकर देखा, एक युवती कंदील हाथ में लिये उसी की कोठरी की ओर बढ़ी चली आ रही है।

कुमारी ने चौंकर कहा—“कौन—मालती ? क्या बात है ? यहाँ तू क्यों आयी ?” युवती ने कहा—“कुमारी, बहुत समय हो गया, अब महल में चलिए न।”

कुमारी की चर्चा मालती को अविदित न थी। वह सब जानती थी और इसीलिए कुमारी की विचित्र भावभरी चितवन देखकर भी उसे आश्चर्य नहीं हुआ। परन्तु उसे आश्चर्य इस बात पर अवश्य हुआ कि बंदी सीखचों से लिपटा हुआ खड़ा उसकी ओर विस्फारित दृष्टि से देख रहा था। वह दीपक को तनिक ऊपर उठाकर बंदी के मुख को ध्यान से देखने लगी। सहसा वह काँप उठी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके नेत्र उस मुख की मलीन रूपराशि में अपनी किसी चिरपरिचित प्रियतम मूर्ति को ढूँढ़ निकालना चाहते हैं।

कुमारी को इतने दिन यहाँ आते हो गये थे, परन्तु मालती एक दिन भी उसके साथ नहीं आयी थी। किसी के अज्ञात

तारे

मीठे रहस्यों की उलझन में पड़ना उसका स्वभाव भी न था । परन्तु आज देर होते देखकर वह यहाँ चली आयी और यहाँ आकर जो कुछ देखा वह बिजली के समान हृदय में कौंद गया । उसे ऐसा मालूम हुआ मानों वह सिहरन की सरिता में डूब-उतरा रही है । अपने को न सम्हाल सकी और चौंककर बोली—“अरे मनोज ! मनोज, तुम हो ।” और ऐसा कहकर सीखचों से लिपट गयी ।

बंदी ने जब पहले “मालती” सम्बोधन सुना, तो वह कुछ चौंका; परन्तु किसी आशा, किसी सम्भावना से नहीं । उसे यह नाम बहुत प्यारा था और इसे सुनकर वह एक बार आन्दोलित न हो उठे. यह असंभव था । परन्तु दीपक के प्रखर प्रकाश में यह देखकर कि यह तो मालती है—हाँ, मालती ही है, वही मालती है—कोई और नहीं है—वही प्राणों की निवासिनी, हृदय की देवी—प्रेम की प्रतिमा मालती है, उसे आश्चर्य और सुख साथ-साथ हुआ और एक प्रबलतम धक्का खाकर उसका हृदय तड़पने लगा ।

बंदी भूल गया कुमारी की उपस्थिति को, भूल गया वहाँ के वातावरण को, वहाँ के वायुमंडल को, समय को, संसार को ! यह भी भूल गया कि मालती विवाहित है । बोला—“मालती ! मेरी प्यारी ! मेरी रानी ! तुम यहाँ महलों में कैसे आयीं ?”

मालती भूल गयी कुमारी को—कुमारी के जीवन से लिपटे हुए इस नग्न सत्य को—अपने चारों ओर फैली हुई जीवन की संसार की छलनाओं को । बोली—“क्या तुम जानते नहीं, यहीं तो मेरा विवाह हुआ था ! मैं यहाँ कुमारी के साथ ही रहती हूँ । वह मुझ पर बड़ा प्रेम रखती हैं ।”

“मेरी प्यारी मालती ! यदि आज तुम्हें न देख लेता तो

तारे

कितनी बड़ी वेदना और हाहाकार भरा दुःख लेकर यहाँ से जाता—यह अन्तर्यामी ही जानते हैं। कल सवेरे हमारी रिहाई होगी। हमें यहाँ से ले जाकर अंगराग-देश के बाहर छोड़ दिया जायगा। तुम्हें देखने का, तुम्हारे दर्शन करने का कोई अवसर ही न था। एक क्षण के लिए भी संतरियों से विलग न हो पाता। जब से इस प्रकार की रिहाई का समाचार सुना है, तब से हृदय में भ्रंभावात चल रहा है। परन्तु मेरा भाग्य ! मेरी आँखों का पुण्य ! मेरे सत्कर्मों का अमरफल ! मेरी यह अभागिनी कामना पूर्ण हो गयी। यह किस अदृश्य विधाता का विधान है, कह नहीं सकता, मेरी रानी ! मेरी देवी, न-जाने कितने दिनों के बाद तो आज तुम्हारी यह मनोज्ञ और गंगा-जल की भाँति पवित्र मूर्ति देख सका हूँ। यह चाँदनी-सी सरल मेरी प्यार की रेखा आज फिर मेरे तिमिर-ग्रसित भाग्य-गगन में चमकी है।”

मालती ने यथासाध्य अपने सिसकते हुए अस्थिर हृदय को रोकते हुए कहा—“प्यारे मनोज ! तुम तो एक कसक-एक टीस बनकर मुझे मिले ! तुम्हें प्यार किया—तुम्हारी पूजा की ; परन्तु तुम्हें न पा सकी—तुम्हारे चरणों को हृदय की सुमन-राशि से न सजा सकी। परन्तु पूछो तो अपनी उस स्मृति से, जो मेरे हृदय में बसती है। उसने मुझे कितना रुलाया है—कितना दुलराया है—कितना कलपाया है और जीवन के लम्बे, अलस, पहाड़-पे दिनों में, संसार की काली-काली मलिन रातों में उसने मेरे संतप्त हृदय को कितना आप्यायित किया है। मेरे सूने एकाकी अदृश्य जीवन की सहचरी तुम्हारी स्मृति मुझे बड़ी प्यारी है, मेरे मनोज !”

एक सौ चालीस

तारे

कुमारी अभी तक हृदय पर पत्थर रखे यह सब सुन रही थी। उसे आश्चर्य हुआ कि उसने अपने उस बन्दी को, जिसे वह प्यार करती रही, अब तक इस सुख से वंचित क्यों रहने दिया। उस महान् आश्चर्य हुआ कि मालती ने किसी दिन भी पहले यह बात नहीं बतायी और न बन्दी ने ही। परन्तु उन्हें भी यह क्या पता था कि वे दोनों इतने दूर-दूर होते हुए भी इतने पास-पास हैं। इतने दिनों के बाद ये दो चिर-विरही आज फिर मिल गये और परोक्ष रूप से वह निमित्त बन गयी। यह सोचकर वह हर्ष से पुलकित हो उठी।

परन्तु ऐं! हृदय में यह वेदना कैसी। यह बेचैनी—यह छटपटाहट—यह कसक कैसी—यह टीसों का आवेग कैसा! हृदय क्यों जलने लगा, कलेजा क्यों काँपने लगा और आँखों के कोटरों में जल क्यों भर आया, यह वह न जान पायी। हर्ष-विमर्ष, सुख-विपाद, प्रसन्नता और आँसुओं को सम्हालती हुई उन दोनों प्रेमियों को वहीं छोड़कर वह उठ पड़ी और बाहर की ओर चली गयी।

सहसा मालती को होश आया—कुमारी चली गयीं। वह भी कंदील हाथ में लेकर चलने के लिए उद्यत हुई कि मनोज ने काँपकर कहा—

“कहाँ जा रही हो, मालती !”

मालती ने अपने को सम्हालते हुए कहा—“कुमारी जा रही हैं, उन्हीं के साथ जा रही हूँ।”

“मालती ! मेरी रानी ! सुनो, अभी न जाओ—तुम्हें तो जाना ही है। मैं तुम्हें रोकनेवाला कौन हूँ। परन्तु फिर भी अपने मनोज को इस प्रकार निराश न करो। आज की रात केवल

तारे

और है। फिर मैं कहाँ होऊँगा, यह अन्नर्यामी ही जानते हैं। तनिक मेरे पास बैठ जाओ। तुम्हें जी-भर देख लूँ। शायद जीवन में भेंट हो या न हो, कौन जानता है ...” कहते-कहते वह वीर सैनिक रो पड़ा।

मालती रुक गयी

“मालती ! कल सुबह मैं चला जाऊँगा। मेरा छुटकारा हो जायगा। परन्तु क्या ही अच्छा हो, यदि यह जीवन इमी कारागार में व्यतीत हो जाय। बोलो, मालती, क्या अब भी तुम मुझे प्यार करती हो ?”

मालती के हृदय का एक-एक अणु मीखचों से टकराकर लौट आता और उसके प्राणों को रुला देता था। बोली — “मनोज ! मेरे इस निकट अतीत का एक-एक क्षण इसका उत्तर दे रहा है, मैं क्या उत्तर दूँ” — यह कहते-कहते मानती ने अपना मुँह फेर लिया, मानों अपने ढरकते हुए अश्रुओं को मनोज की दृष्टि से छिपाना चाहती हो।

मनोज ने व्यथित होकर कहा — “मालती ! एक प्रश्न, केवल एक प्रश्न और पूछूँगा। उसी पर मेरा भाग्य-अभाग्य निर्भर है। सच कहना, मालती ! तुम्हें मेरे हृदय की—मेरे प्राणों की कसम है—क्या इतने दिनों तक तुम्हें मेरी याद आती थी ?”

हाय रे पुरुष-हृदय ! कितना कठोर और पाषाण होता है। यह प्रश्न किसी के लिए कितना तीक्ष्ण और वेधक हो सकता है, इसकी शायद उसने कल्पना ही नहीं की थी।

मालती अपने को अब न रोक सकी। उसका कंठ भर आया और वह फफक-फफककर रोने लगी। इस रुदन को

तारे

ऊपर निगापति देख रहे थे, और नोचे उस सीखचेदार कोठरी में एक मौन मलिन प्राणी...

“मालती अब न रोओ। हाय मैं कैसा भाग्यहीन हूँ कि आज इतने दिनों पर तुमसे मिला तो तुम्हें रुकाने के लिए। मैं जानता हूँ कि तुम मुझे कितना प्यार करती हो। परन्तु फिर भी तुमसे पूछने का, तुम्हारे मुँह से सुनने का लोभसंवरण मैं न कर सका। मेरे जीवन में यही एक आलोक है—यही दीपक है—यही एक नक्षत्र है। मेरी रानी, मुझे क्षमा करो।”

मालती के आँसू थम गये। उसने देखा, मनोज उद्भ्रान्त का नाइ उसी कोठरी में टहल रहा है; ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसके हृदय में एक आँधी चल रही है, एक क्रान्ति-सी हो रही है। वह सजल, कातर कंठ से बोली—“प्यार—प्यार कहाँ करती हूँ, मनोज। यदि प्यार ही करती होती तो तुम क्यों न मिलते। क्यों तुम्हारे श्रीचरणों से वंचित हो जाती। प्यार कहाँ कर सकती हूँ—यह मेरे भाग्य का ही दोष है, मनोज! प्यार तो तब करती जब तुम मेरे हो जाते। परन्तु... और यह रोना तो जीवन-भर है, आज तक किसने मुझे रोने से रोका है और कुछ क्षणों के पश्चात् कौन रोकेगा। जीवन-भर उसी ज्वाला में जलना है, इसी ध्वंसकर दाह में दहना है। अभी तुम रोने से रोक रहे हो; परन्तु तुम्हारे इस प्रेमभरे अनुरोध की उपेक्षा कर रोने में जो सुख है, वह अपूर्व है। इस सुख से वंचित न करो, मनोज! मुझे रो लेने दो, जी-भर रो लेने दो। कल शायद आँसू ही न निकलें। परन्तु तुम्हें—प्रियतम मनोज, तुम्हें देखकर आँसुओं को पीना, उक!”

एक सौ तेंतालीस

तारे

“रहने दो, रानी ! अब उन बातों से क्या लाभ । हाय, विधाता को यही स्वीकार था । न रोओ रानी ! मेरे मन में जाने कैसा हो रहा है । प्राण उड़-उड़कर होठों तक आ रहे हैं । हाय, ये पापी प्राण उड़कर क्यों नहीं बादलों से जा टकराते, न रोओ, मेरी रानी !”

“कैसे मानूँ मनोज ! जो बात मानने की ही नहीं है, उसे मानना क्या अपने वश की बात है ”—फूट-फूटकर रोते हुए मालती ने कहा—“अभी क्या रोयी हूँ ! अभी तो सारा जीवन पड़ा है । अभी तो गलकर बहना बाक़ी ही है । परंतु इस रोने में—अपने सर्वस्व, अपने आराध्य, अपने देवता को पाकर रोने में विचित्र सुख मिलता है । मुझे रो लेने दो, मनोज ।”

मनोज चुप था, उसका रोम-रोम जल रहा था, बोला—
“मालती, तुम देवी थीं, मैं राक्षस था । तुमने मुझे मनुष्य बनाया । मुझमें पुण्यमयी भावनाएँ भरीं और मुझे न-जाने कहाँ पहुँचा दिया । हाय, उसी देवी की पूजा से मैं वंचित कर दिया गया । इतना बड़ा दुर्भाग्य ! न-जाने हमने क्या अपराध किया था ।

सहसा न-जाने क्या सोचकर मालती उठ खड़ी हुई और मुँह फेरे-ही-फेरे बोली—“अच्छा—!” और चल पड़ी । उसके पैर लड़खड़ा रहे थे । मनोज ने चीखकर कहा—“जाती हो ! अच्छा, जाओ मालती ! ईश्वर करे, तुम सुखी रहो । और क्या कहूँ । ईश्वर करे, अनंत सौभाग्यशालिनी बनो और जहाँ रहो, सुखी और सानंद रहो ।”

मालती रुक गयी और आँसूभरे प्रीतिसुकुमल मुख से बंदी

तारे

की ओर देखने लगी । उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सारी कोठरी सिसक रही हो ।

“जाओ, मालती ! अब देर न करो । माया-मोह से अपने हृदय को और दुःखी न करो । मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है ।” उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टप से टुलककर उस कोठरी में छायी हुई उदासी में बिखर गये ।

मालती ने वहीं से झुककर नत नयनों से उसे प्रणाम किया और आँचल से आँखें पोंछती हुई दृष्टिपथ से दूर—सुदूर निकल गयी । बंदी अपलक नयनों से उस ओर देखता रहा, और फिर सीखचों पर सिर लगा बाहर फैले हुए अंधकार में अपनी आँखें बिछा दीं ।

(६)

तीन वर्ष पश्चान् ।

कुमारी का विवाह कलिंग-देश के राजकुमार के साथ हो गया था । कुछ दिन बाद अंगराग-देश और मंदार-देश के नरेशों में फिर लड़ाई छिड़ गयी । कौन जानता था कि इस बार भी मंदार-देश की पराजय होगी, सेनापति मनोज को एक बार फिर बंदी होकर अंगराग-देश में आना पड़ेगा और अनिश्चित समय के लिए कारागार की अपलक निर्जनता में रहना होगा । राजकुमारी अब कलिंग-देश की युवराज्ञी—उन दिनों अपने पितृगृह में ही थीं । ज्यों ही उन्होंने सुना कि मंदार-नरेश की हार हुई और अंगराग-देश की सेना विजयी हुई, वह एक मधुर आशा को लालित करने लगी । कदाचित् फिर बंदी सेनापति मनोज वहाँ लाया जाय । परन्तु दूसरे ही क्षण वह

एक सौ पैंतालीस

तारे

तड़प उठी—कैसे उससे यह हाल कहूँगी, सुनकर उसकी क्या दशा होगी !

रात्रि के सघन अंधकार में उसी चिर-परिचित कोठरी की ओर जाना कुमारी को कितना भला और बुरा लग रहा था, यह उसका हृदय ही जानता था । उसमें कितना सुख-दुःख कितना विष-अमृत था, जिसकी अनुभूति से कुमारी सिहर-सिहर कर रुक-रुक जाती थी । न-जाने कितने अगणित आँसुओं और राशि-राशि मुस्कान से भारानत उनका हृदय रात्रि-समीरण की काँपती हुई हिलोरों के साथ डोलने लगा । आकाश उस समय यमुना की नील सलिलराशि की भाँति निखरा हुआ था, बीच-बीच में बादलों के धवलखंड सिकता-राशि की भाँति फेनोज्ज्वल चमक रहे थे । कुमारी ने ऊपर की ओर देखा । सहसा एक तारा टूटा और न-जाने किस ओर उड़ चला । कुमारी ने व्यथित होकर सोचा—“मनुष्य का जीवन भी इसी तारे के समान है; जलता रहता है—जलता रहता है, और जब हृदय का सारा स्नेह जलकर राख हो जाता है, तो इसी तरह टूटकर भूलंठित बिखर जाता है ।”

कुमारी ने कोठरी के पास पहुँचकर देखा बंदी इस बार बहुत दुर्बल और क्षीण हो गया है, जैसे उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था । परंतु उसके उस पीतिमा-रंजित मुखमंडल पर आशा की एक गुलाबी किरण खेल रही है । न-जाने क्यों राजकुमारी का हृदय रो पड़ा । वह मंद हंसगति से चलकर उन्हीं चिर-परिचित सीखचों के पास खड़ी हो गयी ।

बंदी मनोज की दृष्टि ऊपर उठी । उन्मादभरे स्वर में बोल उठा—“कौन, मालती ! मेरी रानी ! तुम हो ?”

एक सौ छियालीस

तारे

कुमारी ने आवेगों को रोककर कहा—“नहीं बंदी ! मैं हूँ ।”
बंदी मनोज ने राजकुमारी के कंठस्वर से उन्हें पहचान लिया और वहीं दीपक के धुँधले प्रकाश में प्रणाम कर बोला—“बड़ी कृपा की आपने, कुमारीजी ! मुझे आज इस कोठरी में आये तीसरा दिन है, परंतु न तो मेरी मालती ही मुझे देखने आयी और न आप ही के दर्शन हुए—यह तो बताइए मेरी मालती कहाँ है, कैसी है ?”

“... ..”

बंदी ने कुछ उत्तर न पाकर फिर कहा—“राजकुमारी, बोलिए । मेरी मालती क्यों मेरे पास नहीं आयी ! क्या आपकी आज्ञा नहीं पा सकी ?”

राजकुमारी ने विनत वदन से उत्तर दिया—“बंदी, दुःख की बात है, सुनकर रो पड़ोगे, तुम्हारी मालती अब नहीं है ! आज डेढ़ साल हुए, उसका स्वर्गवास हो गया !”

परंतु कुमारी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बंदी फूट-फूटकर रोया नहीं ; वह पूछ रहा है—“क्या बीमार थी, कुमारीजी ।”

“मैं यहाँ नहीं थी उन दिनों । जब मैं गयी थी, तब उसे पूर्ण स्वस्थ और आरोग्य छोड़कर गयी थी ; परंतु जब आयी तो सुना कि उस दिन उसके प्राण अनंत में मिल गये !”

“आप कहाँ गयी थीं, कुमारीजी ? उसे अपने साथ क्यों नहीं ले गयीं । आप तो एक पल के लिए भी उसे छोड़कर बेचैन हो-हो जाती थीं ।”

कुमारी ने कुछ विचलित होकर कहा—“मैं तो उसे अपने साथ ले जा रही थी, परंतु महाराज ने कहा—नहीं, ऐसा न

तारे

होगा । उसके पति को दुःख होगा और मैं ऐसी आज्ञा दे भी नहीं सकता ।”

बंदी के शायद होश-हवास ठीक नहीं थे । इसी से बोला—
“परंतु आप गयी कहाँ थीं, कुमारीजी !”

कुमारी ने कुछ लजाकर—अधरों की मुस्कराहट को दबाते हुए कहा—“अपनी ससुराल गयी थी, मनोज ।”

बंदी को कुछ आश्चर्य—कुछ दुःख और कुछ सुख हुआ ।
उसने पूछा—“कहाँ ?”

“कलिंग-देश में ।”

बंदी कुछ देर तक मौन रहा, फिर बोला—“तो यहाँ उसके अंतिम समय में आप नहीं थीं ?”

“नहीं, मनोज !”

“परंतु उसका और हाल तो आपने सुना होगा ?”

“हाँ, बंदी सुना है । उसके पति को तुम्हारे और उसके प्रेम का परिचय मिल गया था और वह इसे सहन न कर सकता था कि उसकी स्त्री किसी दूसरे पुरुष को प्यार करे । इसलिए उसने बलपूर्वक मालती को तुम्हें भूलने के लिए बाध्य किया । परंतु मालती तुम्हें कितना चाहती थी, ओह ! वह तुम्हें न भूल सकी और पति के अत्याचारों को भी न सह सकी । पति की उदासीनता, निष्ठुरता और अत्याचारों ने उसे तड़पा-तड़पाकर मार डाला । मरते समय उसने पति को बुलवाया । वह अपनी किसी प्रेमिका के यहाँ बैठा प्रेम की सुनहली तसवीरें देख रहा था, न आया । हाय ! सुनती हूँ, इतनी बड़ी अवहेलना और तिरस्कार वह न सह सकी और कुछ ही क्षणों के बाद उसका अंत हो गया । परंतु मरकर

एक सौ अड़तालीस

तारे

क्या वह शान्ति पा सकी होगी ? क्या वहाँ भी उसके साथ वही अशान्ति, वही कलक, वही उद्भ्रान्ति न होगी ? सच कहती हूँ, बंदी, तुम्हारा प्रेम उसे बड़ा महँगा पड़ा !”

“मैं यही सोच रहा हूँ, कुमारी”—ऐसा कहकर वह हृदय पर हाथ रक्खे हुए वहीं लेट गया, मानों निकलते हुए प्राणों को रोकने का असफल प्रयत्न कर रहा हो । कुमारी ने देखा वह अर्थहीन, उदास, शून्य दृष्टि से चारों ओर देख रहा है, उसके नेत्र मरुस्थल की भाँति शुष्क और उदासीन हो रहे हैं । कुमारी और कुछ न कह सकी । चुपचाप चपल चरण-गति से वहाँ से चली आयी । आकाश में तारे अब भी उसी भाँति चमक रहे थे । अन्धकार उतना ही घना था, और उसका हृदय उतना ही उदास ।

(च)

उस दिन हृदय की भीषण यन्त्रणा से तिलभूते हुए बंदी मनोज ने देखा—राजकुमारी ज्योत्स्ना लड़खड़ाती हुई उम्मी की कोठरी की ओर आ रही है । बंदी मनोज निस्तब्ध नेत्रों से उनकी ओर देखने लगा । उसका हृदय रो रहा था, परन्तु आँखें आकाश की भाँति शून्य थीं.....

कुमारी ने सीखचों के पास घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़कर बंदी की ओर देखा और हाहाकारभरे स्वर में कहा—
“मनोज ! मेरे दयालु मनोज ! मुझे क्षमा करो । मैं चांडालिनी हूँ—मैंने ही तुम्हारा सर्वनाश किया है—तुम्हारी प्यारी मालती को दुर्भाव के कारण—पाप से उत्तेजित होकर मरवा डाला है । क्षमा करो मुझ पिशाचिनी को, मेरे मनोज !”

एक सौ उनचास

तारे

मनोज अप्रतिहत-अप्रतिभ आश्चर्य-आलोड़ित होकर उसके मुख की ओर देखने लगा. मानों उस पर छाया हुई भावराशि को पढ़ने का प्रयत्न कर रहा हो ।

“नहीं, नहीं, कुमारी ! तुम नहीं—ऐसा नहीं हो सकता । तुम्हारे इस स्वरूप से भी सुन्दर हृदय में, स्फटिक से भी अधिक निर्मल आत्मा में इतना छल, इतना पाप—इतनी ईर्ष्या नहीं आ सकती !”

“नहीं मनोज ! मैं हत्यारिणी हूँ—पापिनी पिशाचिनी हूँ । मैंने ही तुम्हारी ग्यारी मालती को जहर दिलवाकर मरवाया है । डाह की छलनाओं ने, हृदय के उन्माद ने, पाप के अभि-शाप ने मुझे पागल कर डाला ! मैं अपने को न रोक सकी—मुझे क्षमा करो, मनोज. मैंने सोचा था कि जीवन-भर इस पाप को हृदय में दबाये रखूँगी—प्रकट न होने दूँगी ! परन्तु यह भीषण प्रतारणा । उक्त ! मैं तुम्हारे चरणों पर गिरकर क्षमा की भीख माँगती हूँ । मुझे वरदान दो—आशीर्वाद दो कि मेरा सोहाग अचल—अमर हो !”

बंदी को विश्वास न हुआ ! वह स्वप्न तो नहीं देख रहा है—उसका हृदय धक-धक होने लगा । वह अर्थ-हीन नीरव दृष्टि से ज्योत्स्ना की ओर देखने लगा ।

“नहीं, बिलकुल मिथ्या है—भूठ है । मैं नहीं मान सकता । स्वयं मालती आकर कहे तो भी”

“मनोज ! तुम सरलता, स्नेह, विश्वास की मूर्ति हो । तुम विश्वास कैसे करोगे, मैंने तो तुम्हें उसकी मृत्यु का भूठा बिलकुल भूठा संवाद गढ़कर कह सुनाया था । परन्तु बंदी देखो, यह ज्वलन्त सत्य मेरे हृदय में सूर्य के समान तप-तपकर आग

तारे

की ज्वालाएँ उगल रहा है जो मेरे सौभाग्य को जलाये डालती हैं। मैंने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया है। मेरी गति से—मेरी दृष्टि से—मेरी भंगिमा से पाप की, हत्या की लपटें निकल रही हैं। मेरे हाथ खून से रँगे हैं—मेरे अधरों पर खून की अमिट छाप लगी है। हत्या की—पाप की छलना मुझे रह-रहकर घायल कर रही है। मुझे क्षमा करो, मनोज !”

राजकुमारी की आँखों से बड़े-बड़े आँसू टप-टप गिरकर जमीन के प्यासे अधरों पर सूख रहे थे।

बंदी मनोज तेजी से उठकर कोठरी में घूमने लगा। उसके पैरों में मानों बिजली दौड़ रही थी। पसीने से भीगा हुआ उसका ललाट और मुख उसके हृदय की हलचल को प्रकट कर रहे थे। उसके हृदय में निकले हुए लाल-लाल अग्नि-स्फुलिंग उसके नेत्रों के सामने चिटख-चिटखकर उड़ रहे थे। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोठरी में चिनगारियों की आँधी आ गयी हो।

“मनोज, आज सबेरे मेरे श्वशुर के राज्य से दूत आया है। मेरे पतिदेव मृत्युशय्या पर हैं—बहुत सख्त बीमार हैं। मैं अभी कूच करूँगी। न-जाने क्यों मेरा हृदय एक अभिशाप की प्रतारणा से भर-भर जाता है; तुम्हारा क्षमादान ही मेरी रक्षा कर सकता है, तुम्हारा आशीर्वाद ही मेरे सोहाग को अक्षुण्ण रख सकता है—ऐसा मेरा हृदय कहता है। मुझे क्षमादान दो—वर दो कि मेरी माँग का सिंदूर न मिटे। मेरा सोहाग, मेरा सर्वस्व, मेरा सुख अमर हो। मैं आँचल पसारकर तुम्हारे श्रीचरणों से यही भीख माँगती हूँ। तुम पुण्यात्मा हो, मैं पापिनी हूँ। तुम्हारे समीप अपराधिनी हूँ। मुझे क्षमा करो।”

एक सौ इक्यावन

तारे

फूट-फूटकर रोती हुई कुमारी ज्योत्स्ना आँचल पसारकर सीखचों से लिपट गयी । देखते-ही-देखते उसके अंचल-भर आँसू सीखचों के चरणों पर लोटने लगे ।

“मनोज ! मेरे देवता ! मुझे क्षमा करो । न-जाने कौन रह-रहकर प्राणों में भयानक भय भर देता है । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे पाप की—पतित कर्म की आग मेरे सोहाग को निगलने के लिए मुँह बाये चली आ रही है । उसके मुँह से जलन की—अभिशाप की—रक्ताभ लपटें निकल रही हैं । मेरे नाथ मेरे शृंगार—मेरे सर्वस्व रुग्णशय्या पर हैं । मनोज ! तुम भी मुझे क्षमादान देकर अभय वरदान दो । हाय ! क्या तुम्हें अब भी विश्वास नहीं पड़ता, मेरे देवतास्वरूप मनोज ! मेरे मन का पाप मुझे खाये डालता है—क्षमा करो । मेरी रक्षा करो, मनोज !”

मनोज ने राजकुमारी की ओर देखा, उसके करुणाभरे नेत्र कातर-मौन स्वर में भिक्षुक की भाँति गिड़गिड़ा रहे थे । अत्यधिक रुदन के कारण उसका प्रज्वलित वक्षःस्थल फूल रहा था । वेदना से—अपने अंतर के अनुताप से भारानत वह वहीं सीखचों में सिर लगाये बैठी थी ।

मनोज स्वलित स्वर में बड़बड़ा उठा—“हा दैव ! अब अधिक नहीं सहा जाता, जीवन का अन्त कर दो, नाथ !”

सहसा किसी के आने की आहट सुनकर, एक बार फिर सीखचों में सिर टेककर कुमारी सकरुण-सजल दृष्टि से देखती हुई चली गयी । फिरकर उसने देखा—बंदी मनोज मूर्च्छित पड़ा है । परंतु अपने काँपते हुए चरणों को और दुलकते हुए आँसुओं को वह न रोक सकी । विवश थी ।

तारे

दूसरे दिन प्रभात की किरणवेला में बंदी सेनापति मनोज का शव कोठरी से निकाला गया ।

(छ)

परन्तु कुमारी ने तो उस दिन जाना कि मनोज ने उसे क्षमा कर दिया है, जिस दिन उसके प्राणपति (कलिंग के युवराज कुमार महेन्द्र) ने बताया कि कैसे अपनी मृत्यु-शय्या पर एक दिन स्वप्न में उन्होंने देखा कि आकाश में एक तारा टूट कर उन्हीं की ओर आया और आकर उनके दुर्बल, क्षीण-प्राय हृदय में धँस गया - मानों नवजीवन भर गया हो । और अकस्मान् उसी ज्योतिर्मय क्षण से उनका घातक रोग अच्छा हो चला ।



तारे

तारे

१

हमारी कहानी आज से कई सौ साल पहले उस समय से आरम्भ होती है जब भारतवर्ष के राजनैतिक चित्तिज्ञ पर अशांति के बादल छाये हुए थे। भयानक भू-भ्रंशों का बह रहा था। रह-रहकर काले बादलों के बीच से बिजली चमक जाती थी—यही मालूम होता था कि न-जाने कब मूसलाधार वृष्टि शुरू हो जाय और एक भयानक प्रलय की बाढ़ में भारतवर्ष विनाश की ओर बढ़ चले।

एक साधारण से गाँव के एक सुन्दर पक्के और कलरव-

एक सौ सत्तावन

तारे

शून्य मकान में—खुले हुए आँगन में दो किशोरी बालिकाएँ बैठी हुई आकाश की ओर नीरव अपलक दृष्टि से देख रही थीं। संध्या हो चली थी ; गोधूली की लालिमा के भीतर से दो तारे उधर अंतरिक्ष पर झलक रहे थे, मानों कल्पना के कनकराज्य में दो प्रीतिसुकोमल स्मृतियाँ खिल आयी हों। दोनों बालिकाओं ने यह देखा और आज उन्हें न जाने इन तारों में क्या आकर्षण, कौन-सी पुलकावली दिखायी दी कि वे उधर ही देखती रह गयीं। तारे चमक रहे थे, मानों नवचुम्बित अधर प्यार के संभार से काँप रहे हों।

बालिकाएँ राजपूत-घर की थीं। उनमें एक नवपरिणीता-सी मालूम होती थी। उसके सौन्दर्य के आलबाल में उसका मधु यौवन गुलाब की लाल-लाल पंखड़ियों की भाँति खिल पड़ा था। उसके पैरों के बिछुए, मस्तक का सरस सिन्दूरबिन्दु और अधखुली कुन्तलराशि के बीच से मुस्कराती हुई मोदमयी सौभाग्यरेखा, सब उसके विवाहित होने का विज्ञापन कर रहे थे। वह इन्द्रधनुष के रंग की एक महीन साड़ी पहने हुई थी जिसके भीतर से उसकी सौन्दर्यश्री उन्मत्त होकर फूट रही थी।

दूसरी बालिका अभी कौमार्य की भाँति ही निष्कंप दीपशिखा-सी जल रही थी—कारण—विवाहित जीवन में एक सरस रतिमंथर विलासिता और तंद्रालस मधु-मादकता होती है, जो अभी उसके जीवन में नहीं फैली थी। बालिका की आँखों में एक तरलतम द्रव पदार्थ भरा हुआ था जो कोमलता की भीनी-भीनी आर्द्रता बिखेर रहा था। रंग मोती की भाँति स्वच्छ आबदार था। यौवन के मधुवन में उसका प्रवेश हुए अधिक समय नहीं हुआ था।

एक सौ अट्ठावन

तारे

सहसा इस कुमारी ने कहा—यह उधरवाला तारा कितना चमक रहा है, हेमा। अभी तो ठीक तरह से संध्या भी नहीं हुई और यह चमकने लगे।

हेम बोली—लता ! तुझे देखने के लिए धैर्य नहीं रख सके। इसीलिए तो रात होने तक न ठहरकर अभी से भाँकने लगे हैं।

कुमारी लता ने कहा—मुझे देखने के लिए या तुम्हें देखने के लिए, यह तो बही जानें। परन्तु देख री हेम ! न-जाने क्यों ये मुझे बड़े अच्छे लगते हैं। इन तारों से मुझे बड़ा मोह लगता है। रात को जब कभी नींद खुल जाती है तो मैं बड़ी देर तक इन्हें ही देखा करती हूँ। सुबह जब ये अस्त होने लगते हैं तो न-जाने क्यों मुझे एक प्रकार का अज्ञात दुःख और भय-सा होता है। एक रहस्यपूर्ण शंका मेरे हृदय में काँप उठती है। यदि कहीं ये तारे दिन-रात आकाश में खेलते रहें तो मुझे एक अपूर्व सुख मिले !

हेम ने मुस्करा दिया—अभी भावुकता का ज्वार है, इसीलिए तारे-चन्द्र सभी अच्छे लगते हैं। अभी रंगीन उमंगें हृदय में उमड़ रही हैं न।

लता—नहीं हेम ! न-जाने क्यों मुझे यह मालूम होता है कि एक-एक नक्षत्र एक-एक प्राणी का भाग्य है। दिन में यह सो जाते हैं, इसीलिए उस समय संसार में इतना कोलाहल, इतनी हलचल और इतना हाहाकार मच जाता है। रात्रि में कितनी शान्ति, कितनी मौनता और कोमलता छाया रहती है। जिस समय कोई तारा टूटता है, उस समय न-जाने क्यों मेरा हृदय बैठ जाता है। देखो, न-जाने वे कौन-से भाग्यवान्

तारे

प्राणी हैं जिनके भाग्य अभी से रात्रि की रजत-रेखाओं में झिलमिला उठे हैं। आधी रात को एक तारा बड़ी ही मोहिनी छवि के साथ चमकता रहता है। जब तक मैं जागती रहती हूँ तब तक तो नहीं, परंतु सोने के बाद ज्यों ही नींद खुलती है उसे देखती हूँ। न-जाने कौन हृदय में यह भावना भर देता है कि यह मेरी हेम का भाग्यतारा है, जो इस मादक पुलकावली में खिल रहा है।

हेम ने हँसकर कहा—अपना भाग्यतारा भी कभी देखा है, लता ! (प्यार से) ज़रा उससे पूछना कि मिलन होने में अभी कितनी देर है—कब तक यह प्रेम की पीर सहनी पड़ेगी ?

लता ने हँसकर कहा—यह आकाश मृगतृष्णा का समुद्र है ; मनुष्यों के ये भाग्यदेवता इसमें युग-युग से हाथ-पैर मारते रहते हैं, परंतु किसी को अनन्त सुख-सौभाग्य नहीं मिलता। न-जाने क्यों लोग अपने इन भाग्य-अधीश्वरों को भूले रहते हैं और इस उदय-निलय को नहीं समझ पाते।

देखते ही देखते संध्या का अंधकार घना हो गया। और तारों की पाँति की पाँति सुनील अंबर के इंद्रजाल में खेलने लगी।

सहसा हेम ने कहा—बहन लता, अब जाती हूँ। रात हो चली।

लता ने कहा—देखो, भूल न जाना। तुम्हारा ब्याह क्या हो गया, रंग ही बदल गया। कभी-कभी तो आ जाया करो। यहाँ हो, तभी तक आने के लिए कहती हूँ। वहाँ थोड़े ही बुलाने जाऊँगी। 'उन्होंने' कहीं कह तो नहीं दिया कि अपनी सहेलियों को भी भूल जाओ।

एक सौ साठ

तारे

हेम ने कहा—तू भी इसी तरह भूल जायगी !

२

तनिक उस युग का हम विशेष परिचय भी करा दें । दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट् औरंगजेब का शासन था । चारों ओर हवा में एक भयानक विप्लव की सनसनाहट भरी हुई थी । राजपूताने में घर-घर अशान्ति की ज्वालाएँ उठ रही थीं । औरंगजेब के भीम चक्र में हिंदुओं का जीवन पिसा जा रहा था । बादशाह के महान् पूर्वजों ने हिंदुओं को हृदय से लगाकर उन्हें अपने प्रेम से नत कर दिया था ; औरंगजेब उन्हें ही चकनाचूर कर देना चाहता था ।

दोनों बालिकाएँ राजपूताने के एक गाँव की थीं—दोनों एक ही गाँव की थीं । साथ ही साथ दोनों ने बचपन का, क्रीड़ापूर्ण कलरव का मनोहर काल बिताया—तितली की भाँति प्यार में नहाकर गाँव की सुहावनी गलियों में उछली-कूदीं—गुड़ियों का रास रचाया । साथ ही साथ दोनों ने यौवन के मधुवन में भावना का प्रथम चरण रक्खा और जीवन में होनेवाले इस निगूढ़, मायावी और मोह से रंगीन प्रिय सुहावने परिवर्तन को जाना-समझा ; सौंदर्य के ऊपर किसी अदृश्य, अज्ञात, मायावी अंतर्देवता द्वारा खींची गयी इस मूर्च्छना और उल्लास की ऐन्द्रजालिक रेखा को आँख फाड़कर आश्चर्यचकित लोचनों से देखा । हेम का विवाह भी हो गया और वह अपनी डबडवायी आँखों में सुख और आशंका का एक संसार लिये हुए अपने पति के साथ चली भी गयी । परंतु लता वहीं रह गयी । वह अभी कुमारी थी ।

एक सौ इकसठ

तारे

आज कई महीनों के बाद दोनों सखियाँ मिली थीं। एक नवपरिणीता और नवयौवना कुमारी में और कौन विशेष बातें हो सकती थीं। हेम बहुत देर तक लता के घर का—गाँव का हाल पूछती रही; अपने ससुराल की दुःख-सुख की—‘उनकी’ रसभरी बातें सुनाती रही; और लता के विवाह का जिक्र छेड़-छेड़कर बीच-बीच में उसके हृदय में एक अज्ञात भावना, आशंका और जिज्ञासा उद्दीप्त करती रही। चित्रन की एक-एक रेखा में प्रेम फूट रहा था। बातें करते ही करते बड़ी देर हो गयी—शाम ही हो गयी। हेम लता से गले मिलकर—उसे हृदय से लगाकर विदा हुई।

हेम नवपरिणीता तो थी, परंतु नवविवाहिता लड़कियों में जो गंभीरता और स्थिरता आ जाती है वह उसमें न आयी थी। उसके बचपन की चंचलता और हृदय की अस्थिरता नवल यौवन के आवेग से मानों और भी बढ़ गयी थी। वह आपे में न रहती थी। उसका हृदय—उसका जीवन—उसका आनंद—उसकी कल्पना सदैव बिखरी रहती। उल्लास—मस्ती—हास्यविनोद, यही उसका जीवन था। विपरीत इसके लता गंभीर और स्थिर थी। उसका चंचलपन यौवन की अरुण उषा में ही, सुदूर लोक से आती हुई रजनी की कलालाप ध्वनि के समान, न जाने कहाँ उड़ गया था; जीवन की गहराई अपने सुंदरतम रूप में उसके नेत्रों के सामने घूम जाती थी। साथ ही उसमें भावुकता भी अधिक थी। तारे, चंद्र, सूर्य, नीलाकाश, घास, फूल और वर्षा की नन्हीं-नन्हीं बूँदें—सभी में उसे एक प्रियतम आभा का सौन्दर्य दिखाई देता था।

तारे

हाँ, तो हेम अभी बालिका ही थी। यद्यपि उस समय उसने हँसकर टाल दिया था, तथापि लता की बात उसके हृदय में गूँज रही थी। उसके हृदय में एक विचित्र जिज्ञासा और कौतूहल जागृत हो उठा था। उसने अपने भाग्यतारे को देखना चाहा जिसे रोज़ रात को लता अपने आँगन में, सोनजुही की भाँति, फूलते देखती थी। कैसा है मेरा भाग्य—तनिक मैं भी देखूँ। क्या मुझे ही न दिखायी देगा ! लता को क्यों रोज़ रात की—आधी रात की अग्न्यंघ्रियों में दिखायी देता है ? वह एक अपूर्व रहस्यमय कौतूहल और आकांक्षा से आन्दोलित हो उठी।

रात को भोजन करके वह पलंग पर लेटी तो नींद का नाम न था। बड़ी देर तक इधर-उधर करवटें बदलती रही और ऊपर आँखें टाँगे निहारती रही। अचानक मा की नींद टूट गयी और वह बोली—क्या है हेम ! आज तुझे नींद क्यों नहीं आ रही है ? आज तो ऐसी गरमी भी नहीं है।

गरमियों के दिन थे सही, पर उस दिन साधारण गरमी थी। ठंडी-ठंडी हवा तंद्रा की अलस लोरियों को अपने झुकोरों में लिपटाये हुए आती और हृदय को शीतल कर फिर जाने कहाँ चली जाती थी। हेम ने कहा—कहाँ, कुछ तो नहीं अम्मा ! ऐसे ही जाग रही हूँ।

आधी रात तक हेम जागती रही, यहाँ तक कि जब गाँव के सरदार ठाकुर साहब की झोड़ी का आधी रात का घंटा बजा, तब उसके नेत्रों में एक विचित्र मनुहार उमड़ पड़ी। वह उठकर बैठ गयी और ऊपर की ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगी। उसने देखा—ठीक उसकी आँखों के सामने एक

तारे

बड़ा-सा सितारा तेजी से चमक रहा है—एक ज्योतिर्मय प्रतिमा की भाँति । परन्तु उसने एक विचित्र बात यह देखी जो शायद लता ने उससे नहीं बताया थी । उसने देखा कि उसी तारे के पास एक छोटी-सी तारिका आकाश के दलों को चीरकर निकल पड़ी है और मानों पार्श्ववर्ती ज्योति से क्षण-प्रतिक्षण उद्भासित होती जाती है । ज्यों-ज्यों उस छोटी तारिका का प्रस्फुरण होता जाता, त्यों-त्यों हेम के सौभाग्यतारे की ज्योति फीकी पड़ती जाती । परन्तु इसको सब नहीं समझ सकते । केवल हेम की अधीर, नैश जागरण से उमंगी हुई आँखें ही देख सकीं कि इस तारिका ने मानों उसके भाग्यतारे का सारा तेज, सारा ऐश्वर्य और सम्मोहन-मोद छीन लिया है । वह बड़ी देर तक एक अनिर्वचनीय भावावेश में डूबी हुई उसकी ओर देखती रही ; उसने स्पष्ट देखा—धीरे-धीरे उसका भाग्यतारा फीका पड़ता जाता है, और उसकी धूमिल श्री के दूसरी ओर पार्श्व में वह ज्योतिप्रतिमा पल-पल पर प्रकाशमान हो रही है । एक अज्ञात आशंका के भय से वह कंटकित हो उठी । सिहरकर उसने अपने को अपने आपमें छिपा लेना चाहा । वह लेट गयी और आँखें गड़ाकर उधर ही देखने लगी । इस अद्भुत दृश्य ने उसके समस्त प्राणों को खींचकर उसकी पुतलियों में भर दिया ।

ऐं ! वह चौंक पड़ी । उसने देखा, वह छोटी तारिका तो एक रूप-सा धारण कर रही है—मानों हेम के तारे का सारा ऐश्वर्य लेकर वह अपने अवयवों का निर्माण कर रही हो । देखते ही देखते वह एक परी बन गयी—उसके पंख निकल आये और वह अपने अपूर्व तेज की छाया की भाँति एक ओर

एक सौ चौंसठ

तारे

उड़ चली। कहाँ—यह न मालूम हुआ। परन्तु उक्त ! हेम का भाग्यतारा कितना धूमिल, मलिन और श्रीहीन हो गया था, वसन्त के अंतिम कुसुम की भाँति मुरझा गया था ; न वह तेज था, न वह ताप—न वह उल्लास, न वह ज्योति। वह मोह-माया और सम्मोहन कहीं कुछ भी तो नहीं !

हेम ने उसी आत्मविस्मृत अवस्था में देखा कि वही अप्सरा-मूर्ति धीरे-धीरे उस अमर्त्य संसार में मानों इस मर्त्य संसार में आ रही है। धीरे-धीरे उसने उसकी आँख, कान, हाथ, पाँव, नाक सब देख लिये हैं। उसका मुख भी उसने कुछ-कुछ समझा। परन्तु उसकी चेतना पर एक चमक—एक प्रखर प्रकाश छा गया था, जिससे वह इस रहस्यमूर्ति को पहचान न सकी। न-जाने कहाँ से वह आयी और कहाँ चली गयी। हेम को होश आया—उसकी चेतना लौटी। परन्तु कब—जब वह मूर्ति लुप्त हो चुकी थी और उसके नेत्रों के सामने उसका भाग्यतारा अपने यौवन के लघु अवशेषों के साथ अब भी झिलमिल रहा था।

उस दिन रात-भर जागकर हेम उभी क्षीण-ज्योति तारे को देखती रही। सुबह उसे पलायित होते जानकर मानों उसने उसे अपनी आँखों में भर लिया।

३

दूसरे दिन खा-पीकर हेम फिर लता के यहाँ जाने को तैयार हुई। मा ने कहा—अभी कल तो हो आयी हो, आज क्या करोगी जाकर बेटी ?

हेम ने कहा—ऐसे ही। घर पर मन नहीं लग रहा।

एक सौ पैंसठ

तारे

हेम ने आकर लता से सारा वृत्तान्त कहा। लता को बड़ा आश्चर्य हुआ। संयोग तो देखो कि उसने भी कल रात्रि में ऐसा ही विचित्र और भयजनक दृश्य देखा था। उसके हृदय के अंतरतम प्रदेश में एक अज्ञात बेचैनी और खलबली मची हुई थी। अब हेम के मुँह से यह सब सुनकर उसे किसी रहस्यचक्र की एक भीम आशंका की अनुभूति हो चली।

उसने पूछा—परंतु तुमने यह कैसे पहचाना कि यही तुम्हारा भाग्यतारा है ?

हेम ने कुछ विचलित होकर कहा—वह ठीक मेरे मस्तक के ऊपर, जहाँ मैं पड़ी हुई थी, चमक रहा था। उसकी चमक भी अत्यंत प्रखर और आकर्षक थी। न-जाने क्यों और कैसे मेरे हृदय को भासित होने लगा कि यही मेरे भाग्य का नक्षत्र है जिसके संबंध में तुमने कहा था। परंतु सच बताओ लता ! तुम्हें मेरी कसम है, कुछ छिपाना मत। क्या तुमने भी कल ऐसा ही दृश्य देखा था ?

लता ने कुछ गंभीरता, परंतु लापरवाही से कहा—हाँ, देखा तो था।

हेम—फिर। अब क्या किया जाय ? मेरा चित्त तो बहुत घबरा रहा है। तुमने कल यह सुनाकर मुझे अत्यंत पागल कर दिया है। जब से यह सब देखा, तब से तो मेरा हृदय बहुत अधिक अशांत हो रहा है।

लता—तू पागल है क्या ! इन बातों पर कहीं विश्वास किया जाता है। मैंने तो ऐसे ही हँसी-हँसी में तुमसे यह सब कहा था।

कहने को तो लता यह सब कह गयी, परंतु उसका

तारे

हृदय स्वयं अपनी बात मानने को तैयार नहीं होता था ।

हेम ने कुछ उदास होकर कहा—बहन, मेरी तो परमात्मा से यही बिनती है कि ईश्वर 'उन्हें' सकुशल रखे । जो कुछ होना हो सो मुझे ही हो जाय ।

लता ने कहा—नहीं री ! घबराने की क्या बात है । मैंने व्यर्थ ही तुमसे यह बात कही थी । वह तो मेरी एक सनक थी । तुम जानती हो, बचपन से मैं ऐसी ही सनकी हूँ । तू इस बात पर इतना ध्यान क्यों देती है । जब जीजा इस बात को सुनेंगे, तो वह तो और भी तेरे ऊपर हँसेंगे । शायद मेरे ऊपर भी खूब हँसे । मेरी यह सनक भी कैसी थी !

हेम के मुख पर आशंका की रेखाएँ खेल रही थीं । उसने कहा—बहन, हृदय ही नहीं मानता । ये पापी प्राण ऐसे होते हैं कि जहाँ कोई ऐसी बात सुनी या देखी तो कल्पने लगते और उन्हीं के चरणों के आसपास जाकर मँडराने लगते हैं ।

लता ने हँसकर कहा—प्रेम की कसक है—हृदय की लगन है—अभी नया-नया संयोग है । इसी से इतनी घबराहट है । और क्या कहा जाय ।

दुर्भाग्य से कातर होने पर भी हेम, लता के गुदगुदा देनेवाले मधुर वचनों को सुनकर मुस्करा दी ।

४

इसके बाद रोज़ रात को—आधी रात को जगकर हेम इस दृश्य को देखा करती । रोज़ ही वह वही बात देखती, उसके उज्ज्वल आलोकमंडित भाग्यतारे के पास ही उस तारिका का उदय होता । उसी के भाग्यतारे के प्राणों के रस से मानों वह

तारे

विकसित होती और उसका भाग्यतारा धूमिल, मलिन और श्रीहीन हो जाता। इसके बाद वह तारिका एक परी बन जाती और एक अलौकिक प्रकाश फैलाती हुई न-जाने कहाँ उड़ जाती। फिर तो प्रभात तक हेम का भाग्यतारा वैसा ही फीका धूमिल बना रहता। हेम रोज़ यह सब देखती और व्याकुल हो जाती थी। परन्तु धीरे-धीरे यह उसके लिए एक पुरानी बात हो चली। अब यह दृश्य देखकर उसके हृदय में कोई असाधारण भावना नहीं उठती थी।

सहसा एक दिन हेम के प्राणपति वहाँ आ पहुँचे। पहले तो हेम ने सोचा कि शायद वह उसे विदा कराने आये हों, परन्तु शीघ्र ही उसका भ्रम दूर हो गया। उसके पति युद्ध पर जाने के लिए स्वयं उससे विदा माँगने आये थे। वह एक वीर राजपूत थे। बादशाह और उनके महाराज में युद्ध छिड़ गया था। उनकी कलाइयों का उष्ण रक्त उबल पड़ा और वह जाकर महाराज की सेना में भरती होकर अपने रजपूती शौर्य के जौहर दिखाना चाहते थे।

हेम राजपूत-बालिका थी। समस्त राजपूताने पर उस समय संकट और आपत्ति आयी थी। जाति के गौरव, सम्मान और रजपूती आन का प्रश्न था। हेम ने न केवल अपने पति को सहर्ष विदा किया, वरन् उसने उनके इस निश्चय की—धर्म संस्कृति और मर्यादा की रक्षा के हेतु इस भीषण संकल्प की प्रशंसा की एवं क्षत्राणी-सुलभ साहस और आत्मत्याग दिखाकर पति के हृदयप्रेरक स्थलों को और भी उन्माद से भर दिया। कल सुबह वह युद्धक्षेत्र में चले जायँगे। हेम की माता के विशेष आग्रह से वह उस दिन वहीं रह गये।

एक सौ अरसठ

तारे

रात को खुली ज्योत्स्ना के मधुर प्रकाश में हेम छत पर पति के चरणों के समीप बैठी हुई थी। बातचीत के प्रसंग में उसके पति बोले—हेम, अब की बार लता मुझे देखने नहीं आयी। क्या बात है, क्या उसने मेरा आना नहीं सुना ?

हेम ने कहा—नहीं, उसकी तबियत खराब है। आज कई दिनों से ज्वराकांत है। शायद इसीलिए नहीं आ सकी, नहीं तो आती अवश्य।

कुआँर की प्यारी रात थी। हवा में एक विचित्र प्रकार की मस्ती भरी हुई थी। ठंडी हवा न-जाने किस मधुवन से राशि-राशि उद्दीपन लेकर आती और विश्व के अलसाये हुए प्राणों में उड़ेलकर फिर रस और अमृत के उसी पारावार की ओर चली जाती थी। सामने दूर तक क्षितिज के उस पार भी ज्योत्स्ना का रहस्यलोक न-जाने किस मूर्च्छना से लतपथ—मधु की नन्हीं-नन्हीं बूँदों को लेकर उमड़ रहा था जिसमें स्वप्नों के रंगीन चित्र बाइस्कोप की तस्वीरों की भाँति घूम रहे थे।

हेम और उसके पति सारी रात जागते रहे। कल ही दोनों न-जाने कब तक के लिए अलग हो जायँगे। परन्तु फिर भी कौलाद की भाँति कठोर शरीर के भीतर जो यह स्पंदन से घिरा हुआ छोटा-सा मांसपिंड होता है—जिसे हृदय कहकर पुकारते हैं—उसी से तो मनुष्य शासित होता है। कौन जाने, जीवन में मिलन हो या न हो। अतएव वियोग का यह इस कठिन दुःख भी कर्तव्य की स्वर्णिमा से अनुरंजित होकर अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहा था।

सहसा आधी रात की उन्हीं मदभरी घड़ियों में हेम की आँखें अपने चिरपरिचित भाग्यतारे की ओर उठ गयीं।

एक सौ उनहत्तर

तारे

उसका भाग्यतारा आज अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक तेजी से चमक रहा था, मानों बहुत-से उड्डाओं का एक लघुसमूह हो। परन्तु धीरे-धीरे वह मंद पड़ने लगा। उसके पास ही नवोदित तारिका आज अन्य दिनों की अपेक्षा शीघ्रता से विकसित हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आज वह हेम के भाग्यतारे को बिलकुल ही धूमिल और धुँधला कर देगी। उसकी चमक के सामने आकाश के सभी नक्षत्र श्रीहत—कान्तिरहित प्रतीत होते थे। देखते ही देखते हेम का वह प्रचंड भाग्यतारा केवल प्रकाश की एक कणिका के समान रह गया और वह तारिका उसी दिव्य अप्सरा की भाँति उड़ चली—आँखों से दूर निकल गयी। हेम का भाग्य-तारा अपने पतन पर मानों झिलमिलाता रहा। हेम यह देख-कर मुख और सौभाग्य की—प्यार और अपनेपन की उस मदिरवेला में भी सिहर उठी। उसने पति के विशाल वक्षदेश में अपना मुख छिपा लिया...

दूसरे ही दिन प्रातःकाल उसके प्राणपति उसे अंतिम बार आलिंगन में बाँधकर—अंतिम बार उसके प्रकंपित अधरों को मधुसिक्त कर—कौन जाने कब तक के लिए—चले गये। वह आँखों के किसी गुप्त कोने में नारीधर्म और मुख पर वीरता, आत्मत्याग और बलिदान की मुस्कान लेकर खोयी हुई—सी उनकी ओर देखती रह गयी।

×

×

×

युद्ध में महाराज की हार हुई। उनकी सेना के बहुत-से सैनिक तो मारे गये और बहुत-से इधर-उधर तितर-बितर हो गये। विजय के मद से उन्मत्त मुगलसेना राजपूताने के कुछ

तारे

हिस्सों पर कब्जा करके वहाँ अत्याचार का तांडव-रास रचाने लगी। इधर पहाड़ियों में चारों ओर घूम-घूमकर महाराज अपनी सेना एकत्र करके पराजय का बदला लेने की आयोजना करने लगे।

५

लता बहुत दिनों से हेम से न मिल सकी थी। पहले तो हेम कुछ दिन के लिए अपनी समुराल चली गयी थी, परंतु बाद को उसके पिता जाकर उसे ले आये थे। वह गर्भवती थी और इसी कारण घर से बाहर कहीं आती-जाती न थी। लता ने उस दिन रात को पड़े-पड़े सोचा कि कल हेम को देखने अवश्य जाऊँगी। रात को जब कुछ देर के बाद उसकी नींद खुली तो उसने देखा कि चाँदनी चली गयी है और अंधकार के कृष्ण पटल ने जगत् आकाश और दिशाओं को ढक लिया है। सहसा वह कमरे से बाहर आँगन में निकल आयी। उसने देखा, हेम का भाग्यतारा टिमटिमा रहा है और उसके समीप की तारिका आज बड़े ही अपूर्व रूप से चमक रही है। वह असीम प्रचंडता से चमक रही है और वह अभागा मुरझाकर मानों सदा के लिए विलीन हो जाना चाहता है। एकाएक एक तेज लपक से लिपटा हुआ वह टूट गया और छिन्न-भिन्न होकर न-जाने कहाँ लुप्त हो चला।

लता यह देखकर अर्धमूर्च्छित-सी हो वहीं धम्म से बैठ गयी। हाँ, वह समीपवर्ती तारिका उसी ऐश्वर्य और आलोक से चमक रही थी और मानों हेम के भाग्य की पूर्ति करने के लिए उसके स्थान पर खिसक आयी थी। लता का कलेजा एक विचित्र ठंड से आक्रान्त होकर थर-थर काँपने लगा।

एक सौ इकहत्तर

तारे

दूसरे दिन लता प्रभात-काल की मनोरम बेला में हेम के यहाँ गयी । कहीं यह दृश्य देखकर वह घबरा न जाय, इसलिए उसे धीरज देने गयी थी । परंतु वहाँ जाकर उसने कुछ और ही देखा-सुना । हेम की ससुराल से कोई यह समाचार लाया था कि युद्ध में हेम के पति वीरगति को प्राप्त हुए । उधर भीतर दो-तीन स्त्रियों से घिरी हुई हेम अपने नवजात शिशु की ओर एकटक देख रही है । बच्चे के जोर-जोर से रोने पर कभी-कभी वह चौंक पड़ती है ।

६

एक दिन आधी रात को लता ने नींद खुलने पर बाहर आकर देखा, हेम के भाग्यतारे के स्थान पर वही विरपरिचित तागिका मुस्करा रही है । वह अब संध्या की प्रथम घड़ियों से लेकर निशा के अवसान तक उसी तरह एक ज्योति से चमकती रहती है ।



पापी

पापी

१

गर्ल्स कॉलेज होस्टल के एक प्रकाश-आलोड़ित कमरे में बैठी हुई, लज्जा से सहमी उस अश्रुमयी अन्तर्लक्ष्मी ने कहा — “तो अब क्या होगा ? अब मैं क्या करूँ ?” सामने की कुर्सी पर बैठे हुए एक युवक ने अपने चिन्तित मुख-मंडल को ऊपर उठाकर कहा—“मैं क्या बतलाऊँ, मेरी समझ में कुछ आता ही नहीं । दिमाग कुछ काम ही नहीं करता !”

रात के १२ बजे का समय होगा । छमाही परीक्षा समाप्त हुए तीन दिन हो गये हैं, इसलिए नैश-जागरण से भाराक्रान्त,

एक सौ पचहत्तर

तारे

होस्टल की सब बालिकाएँ निश्चिन्त होकर सो रही हैं। जाग रही है केवल १६ वर्ष की यह किशोरी बालिका और साथ ही निकट के कॉलेज के किसी होस्टल से भागकर—छिपकर आया हुआ यह युवक विद्यार्थी।

बालिका के मुख पर उल्लंघित वेदना के चिह्न झलक रहे थे। चेहरा सूखा और आँखें भयभीता हरिणी की नाईं कातर तथा उमड़ी हुई थीं। परन्तु उसके चेहरे पर लावण्य की एक अनिर्वचनीय आभा बिखरी हुई थी।

बालिका ने धीरे से काँपते हुए कंठ से कहा—“मेरे लिए अब आत्महत्या के अतिरिक्त क्या कोई अन्य उपाय है? कब तक यह बात और छिपी रहेगी दो-चार दिन में खुल जायगी और तब क्या मैं यह काला मुँह दिखा सकूँगी। तुमसे मैंने कई बार कहा परन्तु तुम तो मुझे पतन के इस कागजार में बन्द कर मानों अपने कर्तव्य से अलग हो गये हो.....”

युवक ने विह्वल स्वर से कहा—“तो मैं क्या करूँ? मैं अधिक से अधिक यही कर सकता हूँ कि तुमको लेकर यहाँ से भाग चलूँ। परन्तु जानती हो नीरू! कितना बड़ा तूफान खड़ा हो जायगा। उधर होस्टल में मेरा गायब होना और इधर साथ-साथ तुम्हारा “मिस” होना यह समाचार देश भर में फैल जायगा और कहीं यदि हम लोग पकड़े गये तो कितनी दुर्दशा होगी? मुझे तो कोई मार्ग नहीं सूझता। यदि मेरे दिमाग में यही अशान्ति और उद्भ्रान्ति बनी रही तो मैं किसी क्षण अपना अन्त कर इस यन्त्रणा से छुटकारा पा जाऊँगा।”

बालिका ने सिहर कर कहा—“नहीं मेरे प्राण! तुम ऐसा

एक सौ छिहत्तर

तारे

मत करना। मेरे प्रियतम ! मेरे सुरेश !” और वह युवक के वक्षःस्थल से लिपट गयी।

“क्या करूँ ! मुझे तो अन्य उपाय ही नहीं सूझता ? अब तो इस जीवन से मृत्यु ही अधिक सुखद प्रतीत होती है। मुझ-से तुम्हारा यह आत्म-वेदना से कुम्हलाया सुख नहीं देखा जाता। तुम्हारे कष्ट का एक-एक आवेग मेरे हृदय को क्षत-विक्षत किये डालता है। मैं आज दो रोज़ से कॉलेज नहीं गया। दिन भर इसी सोच में पड़ा रहता हूँ।”

“सुरेश ! मैंने भी आज दो दिन से ग्याना नहीं खाया है। यही सोचती हूँ कि यह पाँचवाँ महीना भी ख़तम हो रहा है। अब तक तो किसी तरह छिप गया। अब कितने दिन और छिपेगा ?”

“नीरू ! कभी-कभी मेरे मन में एक विचार आता है। किसी डॉक्टर से मिलकर कुछ सलाह लें। परन्तु न जाने क्यों ऐसा कार्य करने के लिए मेरा हृदय साहस नहीं करता। यदि उन्होंने सब हाल पूछा तो मैं क्या कहूँगा ?”

“जो कुछ ठीक समझो करो सुरेश ! मेरा तो सब कुछ चला गया। अब और क्या रह गया ? जो कुछ रह गया है वह भी जाने को है। उफ ! जिस दिन यह बात खुल जायगी उस दिन कॉलेज में-होस्टल में; मैं कौन-सा मुँह दिखाऊँगी। प्रेम-संयोग का अन्त इतना भीषण होता है उफ ! यह तो हमने कभी कल्पना भी न की थी। इससे तो वे दिन कितने अच्छे थे जब हमारा मिलन नहीं हुआ था। सुख हमारे हृदय की धड़कन में स्वर मिलाकर गाया करता था। सुखाशा की सुन्दर रंगीन किरणें आँसुओं में इन्द्रधनुष की सुपमा और गुलाब

एक सौ सतहत्तर

तारे

की मकरन्द-भरी अरुणिमा बिबेर देती थीं। और आज, आज तो भविष्य के अभिशापों की कल्पना ही हृदय को निस्पंद कर देती है। जब पापा इस बात को सुनेंगे तो क्या जीवन में मेरा मुँह देखेंगे ?”

भयभीता हरिणी की नाई बालिका मानों अपने भविष्य की ओर देखकर रो उठी।

युवक ने उसके अश्रुभरे चेहरे को अपने कंधे पर रख लिया और उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला “नीरू ! देखो मैं कल ही डॉक्टर से मिलूँगा। अब लज्जा-शर्म से काम न चलेगा। मैं तुम्हारी यह वेदना में भीगी हुई मूर्ति नहीं देख सकता—तुम्हारी मानसिक यन्त्रणा देखकर हृदय तड़प उठता है। मैं सारा संकोच सारी लज्जा पीकर कल ही डॉक्टर से मिलकर उन्हें सारा हाल बता दूँगा और उनकी शरण जाऊँगा। क्या वे मुझ पर कुछ भी दया न करेंगे। उनके पास तो ऐसे केसेज न जाने कितने आया करते होंगे !” भोला-भाली बालिका ने पूछा—“यदि उन्होंने किसी से कह दिया तो ?”

“नहीं जहाँ तक मेरा विश्वास है वे किसी से नहीं कहेंगे।”

“देखो, जा कुछ भी कर सको करके देखो। इस समय सारा संकोच त्यागकर सब प्रयत्न करो। मैं तो तुम्हें कितना प्यार करती हूँ यह कैसे बताऊँ ? तुम्हीं मेरे जीवन, मेरे सर्वस्व, मेरे प्राण हो। यदि तुमने भी मेरी ओर से आँखें फेर लीं तो मेरा संसार में कहाँ ठिकाना रहेगा। मेरे प्यारे सुरेश !” यह कहते-कहते बालिका ने युवक के चरणों पर अपना सिर रख दिया।

एक सौ अठहत्तर

तारे

युवक ने बालिका को उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने उच्छ्वसित हृदय के भार को दबाने लगा ।

“तो कल तुम आवोगे ?”

“कड़ नहीं सकता नीरू ! माँका मिलने पर है । यदि माँका मिला तो कल ही आ जाऊँगा नहीं तो फिर किसी दिन ।” कहते हुए युवक ने अपनी कलाई पर की घड़ी की ओर देखकर कहा “अच्छा ! मैं अब जाता हूँ । बहुत समय हो गया ।”

“जरूर आवोगे ना ? भूलना मत । मैं बड़ी बेचैनी से तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी । एक-एक क्षण मेरे लिए युग हो जायगा । तुम्हारे ही आने न आने पर मेरा जीवन-मरण निर्भर है , यदि तुम शीघ्र न आये तो मुझे जीवित न पावोगे । तो बोलो आवोगे न ?

“कैसी बात कहती हो नीरू ! क्या तुम्हें कुछ सन्देह है ?” युवक ने अपना टार्च मेज पर से उठाते हुए कहा ।

हाय ! वह भोली, सरल बालिका यह कैसे बताये कि नहीं ! सन्देह उसे रंचमात्र भी नहीं है परन्तु पापी हृदय ही नहीं मानता ।

युवक कमरे के बाहर धीरे-धीरे सतर्क गति से छिपता हुआ चला गया और बालिका ने धीरे से किवाड़ बन्द कर लिये और चिन्ता तथा शोक से आक्रान्त, पलंग पर आकर लेट रही परन्तु नींद कहाँ !

२

युवक का नाम था सुरेशकुमार ।

युवती का नाम था निरुपमा देवी ।

एक सौ उन्नासी

दोनों एक दूसरे को बहुत चाहते थे । एक दूसरे पर लट्ठू थे—बलि-बलि जाते थे—निछावर होते थे । दोनों प्यासे थे—दिल में प्रेम की पगली आग थी—अधरों पर हविश थी । उन्हें आकाश में और अधिक नीलिमा दिखायी देती थी—गुलाब में और भी अधिक रक्तिमा-अरुणिमा फूट पड़ती थी । प्रेम की उमगी हुई स्निग्ध गुलाबी चितवन की ज्योति में उनके हृदय के शतदल एक अज्ञात आनन्द के भार से फूट पड़े थे । उन दिनों वे मदमत्त होकर, पथ भूलकर, भ्रान्त मधुलुब्ध भ्रमर की नाई किसी अज्ञात वसन्त की आशा में अनजान प्रदेश की ओर उड़े चले जा रहे थे ।

निरूपमा ने पहले-पहल सुरेश को एक डिबेट में देखा था । अन्य छात्राओं के साथ वह भी सुनने गयी थी । विषय था बालक-बालिकाओं का साथ-साथ अध्ययन (Co-education) । सुरेश भी बोलने आया था । जिस समय वह बोला उस समय उसके मनोमोहक व्यक्तित्व और मादक स्वर ने धूम मचा दी । रस की उमड़ती हुई तरंगिणी में सभी बालिकाएँ तारक-परियों की भाँति डूबने-उतराने लगीं । स्वयम् मिसेज मेहरा ने जो बालिकाओं की सुपरिन्टेन्डेन्ट थीं भावावेश में आकर कह डाला था—“इस लड़के के प्वाइन्ट्स बड़े मधुर और लाजवाब हैं—आवाज़ भी कितनी प्यारी है ।” और जब सुरेश ने अपरिचिता निरूपमा की ओर देखते हुए कुछ मुसकराकर कहा था—“को-एजुकेशन न होने से हम जीवन के एक बहुत बड़े आनन्द से वंचित रह जाते हैं ।” उस समय न जाने क्यों निरूपमा को यही प्रतीत हुआ कि यह

तारे

जात उसी को लक्ष्य करके कड़ी गयी हैं। वह एक अज्ञात पुलकावली से सिहर उठी थी। उस समय उसने यौवन के मधुवन में प्रथम चरण ही रखा था और उसके मानस की कुमुदवालाँ, किसी अपलक थरथर सिहरन की भीनी रेशमी घटाओं में अपने प्रियतम के मुखचन्द्र को खोजा करती थीं। अनागत भविष्य स्वर्णजटित स्वप्नों से सजा हुआ मालूम होता था। एक कोमल मूर्छना, विस्मृति की लालसा, रह-रहकर प्राणों में मीठी सिहरन और अधरों में उन्मद कम्पन भर देती थी। वह इसी साल हाई स्कूल की परीक्षा पास करके फर्स्ट ईयर में आयी थी। जीवन में कितना अमृत, कितना विष, कितनी मदिरा और कितना उत्थान-पतन होता है यह उसे ठीक से ज्ञात न था।

इसके बाद धीरे-धीरे सुरेश को वह प्यार करने लगी। प्रणय आरम्भ हुआ—पनपता रहा और अन्त में एक दिन, सौरभ के भार से लदी हुई कलिका के समान फूट पड़ा। उसके मानस-पथ पर अंकित मोह—प्रेम के वे चरण-चिह्न सजीव, साकार और कदाचिन् सवाक् होकर कागज पर उतर आये और सुरेश उन्हें देखकर पहले तो कुछ विस्मित, चकित हुआ परन्तु बाद में वह भी उन पत्रों का उत्तर उसी चाव से, उसी ललक से—उसी प्रेम से देने लगा। दोनों ने एक दूसरे को देखा था, एक दूसरे पर रीके थे और अब दोनों एक दूसरे के पत्र पाकर बड़े प्यार से पढ़ते—हृदय से लगाते और उनका उत्तर देते थे। मधु के आवेगों—मदिरा की हिलोरो से उनकी जीवन-धारा कल्लोलित हो रही थी। उस अचेतन, आत्मविसंज्ञ अवस्था में बेहोशी के भ्रंभावात में, मूर्छना के तूफान में, न

एक सौ इक्यासी

जाने कौन-सी कल्पना शत-शत सुमनों की भाँति चिर सुरभित होकर उनके प्राणों को पुलकाकुल, अधीर और उत्तेजित कर देती थी और वे एक अभाव की अनुभूति से मचल उठते थे। बीच-बीच में सुरेश और निरूपमा की भेंट होती रही। कभी-किसी 'डिवेट' में, कभी किसी मैच में, कभी सिनेमा में और कभी यों ही टहलते हुए सड़कों पर दोनों मिल जाते—एक दूसरे को पूरे खुले हुए निभ्रान्त नेत्रों से—प्यासी आँखों से देखते परन्तु हृदय की प्यास और बढ़ जाती—कलेजे की ज्वाला और भभक उठती। वे एक शब्द बोल भी न सकते थे। सुरेश भी दो-चार मित्रों से घिरा हुआ होता था और निरूपमा भी दो-चार सहेलियों के बीच में रहती थी। परन्तु उनकी पुतलियाँ न जाने किस उन्माद से आलोड़ित होकर नशे में भूम जातीं। दोनों भावोन्मत्त हृदयावेश की भाँति काँपने लगते। उनकी आँखें जा-जाकर एक दूसरे के हृदय के चरणों पर लोटने लगतीं। एक दूसरे से दो बातें करने के लिए—एक दूसरे को घंटों प्यास नयनों से निहारने के लिए—वे व्याकुल हो उठते—एक ठंडी साँस हृदय के अन्तराल में निकलकर उसी में विलीन हो जाती।

अन्त में वे इस अनिश्चित वियोग की अवधि न सह सके। मिलने के लिए यहाँ तक आकुल हो गये कि उन्हें जीवन का—भविष्य का—परिणाम का और कर्तव्य का कुछ भी ध्यान न रहा। प्रेम यों ही अन्धा होता है—फिर जहाँ वासना हो—प्यास हो—हृदय की आग हो, वहाँ क्या पूछना! सुरेश भी अन्धा हो गया और निरूपमा भी इतनी पागल हो गयी कि दोनों ने समाज के सारे बन्धनों को तोड़ने में किसी प्रकार

तारे

के भय, संकोच और लज्जा की अनुभूति न की। अपने सम्मान को—अपनी प्रतिष्ठा को—यहाँ तक कि अपने जीवन को भी उन्होंने प्रेम के इस ज्वालामुखी में उत्सर्ग कर दिया। एक कामतरंगालोड़ित लालसा के सम्मुख उन्हें यह सब तुच्छ जान पड़ा। वैसे ही एक पूर्व पत्र में निर्दिष्ट समय पर अन्धकार की राशि-राशि पुलकावली से काँपता हुआ—किसी तीव्रतम हाला के आवेगों में भूमता हुआ सुरेश एक दिन अखंड आधी रात में, अपने आपसे डरता हुआ—अपने आपमें, अपने को छिपाता हुआ, न जाने कैसे, किन उपायों से निरूपमा के कमरे में घुस आया ! जैसे जीवन-कानन में, राका रजनी की छाया में छिपकर, मालती-रन्ध्रों में वसंत घुस आता है और वक्षःदेश के कंपन में स्वर मिलाकर गाने लगता है। कमरे में निरूपमा बैठी हुई अधीर, जागरण से उमंगे हुए नेत्रों में उसकी राह देख रही थी। उसकी प्यासी आँखों में उत्सुकता छायी हुई थी और उन्माद की एक गुलाबी रेखा रह-रहकर चमक उठती थी। सुरेश को देखते ही वह उद्दीपन के पंखों पर चढ़कर नाचती हुई किसी अज्ञात, अदृश्य भावना-लोक को उड़ चली। सुरेश के स्कंधों पर अपना शिर रखकर प्राण की एक विपुल फेनिल तरंग में वह चुम्बन-सी डूबने उतराने लगी..... ।

इसके बाद सुरेश वहीं नित्य आने-जाने लगा। बहुत सतर्कता, सावधानी और भय-मिश्रित साहस के साथ वह समय-समय पर, रजनी के निस्तब्ध निर्जन में छिपता-छिपाता वहाँ जाता और निरूपमा के कमरे के दरवाजे पर धीरे से हाथ मारता। निरूपमा—यौवन के श्वासोच्छ्वास में फेनों की भाँति

एक सौ तिरासी

तारे

डूबती, उतराती हुई, ऊपर-नीचे होती हुई आधी रात की मद-भरी घड़ियों में उसका स्वागत करती ।

बहुत दिनों तक यह प्रणय-व्यापार चलता रहा । इसके बाद उनके जीवन की डाली पर कुसुम की भाँति वह सत्य एकाएक न जाने कैसे विकसित हो गया । जिसकी उन्हें कोई सम्भावना भी नहीं थी, जिसकी उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी । उनका लघुभार चित्त सदा अटूट, अव्याहत भाव में सुख-स्रोत की तरंगों में उतराता हुआ बहा जा रहा था और सामने जीवन के नीलांजनवर्ण क्षितिज से जो माया-विनी छलना फूट रही थी उसकी ओर देखना उन्हें सर्वथा अप्रिय था । इसी लिए जिस दिन निरुपमा ने सुकोमल, भयभीत, कम्पित और ओस-भरे चेहरे को ऊपर उठाकर लजाते हुए कहा कि मुझे गर्भ है उस दिन मुरेश के पैरों के नीचे से धरती खिसक गयी और वह शून्य के उमड़े हुए पारावार में विलीन होने लगा । तब से आज तक उनके मिलन के सब मुन्दर क्षण इमी दुश्चिन्ता और निकट भविष्य की ओट में छिपे हुए भय की व्याकुलता में उदासीन, निराश एवं कातर हो उठते थे ।

×

×

×

मुरेश निरुपमा को हृदय से प्यार करता था । परन्तु यह कहना सर्वथा अनुचित होगा कि उनके प्रेम में वासना नहीं थी । वासना का अतिरेक था । काम की तरल, फेनिल और उन्मत्त तरंग उनकी एक-एक नस में, एक-एक भावना में विहार करती थी और वे उन आवेगों में—उस ज्वारभरी बहिया में अन्धे होकर—पागल की भाँति डूबने-उतराने लगते

एक सौ चौरासी

तारे

थे । परन्तु फिर भी सुरेश निरूपमा को प्राणों से बढ़कर प्यार करता था । हाँ, उसका प्यार आदर्शवाद से दूर, बहुत दूर—उसका प्यार चाँदनी के समान शीतल, मधुर और स्निग्ध नहीं था, बरन् सूर्य के समान ज्वलन्त और प्यासे हृदय की जलन से आलिंगित था । परन्तु उस प्यार का कोई अन्त न था—कोई सीमा न थी, वह अपार था ।

रात के कोई तीन बजे निरूपमा के होस्टल से लुकता-छिपता आकर सुरेश अपने कमरे में पहुँचते ही लेट रहा । भाँति-भाँति की चिन्ताओं से आक्रान्त उसका मस्तिष्क निष्प्राण और शिथिल हो रहा था । दुःख के—शोक के आवेगों से अभिभूत होकर सुरेश सो न सका । सारी रात वह पड़ा करवटें बदलता रहा । विचारों की प्रतिक्रिया से वह पागल-सा हो रहा था । इस यन्त्रणा से छुटकारा पाने का उसे कोई मार्ग नहीं दीख पड़ता था । सोचते-सोचते वह एका-एक उठकर बैठ गया और बेसुध उद्विग्न होकर कमरे में टहलने लगा । उसके हृदय में तूफान चल रहा था । जीवन और मृत्यु के संघर्ष-सा, रहस्यमय कंपन उसके हृदय को मथने लगा और उसमें भाग-सा निकलने लगा । ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह चकनाचूर होकर कमरे की एकान्त निर्जन उदासीनता में बिग्वर जायगा । चारों ओर अंधकार—एकाकी गहन अंधकार जिसका न आदि है, न अंत है ; और अभिशप्त, वेदना से त्रस्त वह आर्तस्वर में भयानक चीत्कार कर रहा है, परन्तु निकल नहीं पाता । रात्रि-स्वप्न के माया-जाल में दुर्भावनाओं के सम्मोहन में—जीवन की अन्तिम रक्तमय गोधूलि में वह ग्योया हुआ है । सामने दूर—सुदूर क्षितिज की ओर एक

तारे

टिमटिमाता हुआ सांध्य तारा है । उसे पकड़ने के लिए वह मानों उसी ओर उड़ जाना चाहता है, परन्तु वहाँ के विदारुण ज्वालामय आघातों से अभिभूत होकर मृत्यु की सहयोगिनी ज्वालामुखी के भूकम्पों में आ गिरता है ।

वह आगे सोच न सका । विचारों की प्रतिक्रिया उसे रह-रहकर व्याकुल करने लगी । रह-रहकर उसके नेत्रों के सामने एक भयानक छाया—एक मृत्युमयी श्वेतशीत मूर्ति घूमने लगी । हाँ, यही ठीक है । इसी में इस निष्ठुर यंत्रणा का अंत है । परन्तु इतने संकल्प-विकल्प क्यों ? प्रलय की मदनोन्मत्त आँधी क्यों ! उफ् ! री मोहिनी माया ! मैंने उसकी कौमार्य-सुरभि का रमास्वादन किया—उसके यौवन का उच्छ्वसित पंखड़ियों को चूम चूमकर मृदु-स्वप्नों में भर दिया और अब ? अब अपने अपूर्ण अमिट, अतृप्त मनोरथों के रुदन से—मृत्यु के पाण्डुर अधरों की म्लान हँसी में उन्हें.....

३

रात्रि के विपुल अन्धकार में गर्ल्स होम्टल की अम्लान मुखरित सचल सौन्दर्यश्री मुग्ध और निस्तब्ध हो रही थी । कुमारी छात्राएँ मुख की मीठी नींद सो रही थीं । जाग रही थी केवल चित्ताकुल निरुपमा । आज कई दिनों में सुरेश की राह देख रही थी । शायद आज आये—शायद आज आये, परन्तु कई दिन में निराश होकर—सजल नयनों से अपनी कल्पना में छायी हुई भविष्य की भयानक छाया की ओर भय-कातर दृष्टि से देखकर रह जाती थी । आज सहसा उसने दरवाजे पर धीरे से थपथपाहट की आवाज सुनी और जाकर धीरे से दरवाजा खोल दिया । फिर सावधानी से इधर-उधर

एक सौ छियासी

तारे

देखकर बन्द करके उसके पास आ गयी । सुरेश का चेहरा उतरा हुआ था और पीला पड़ गया था । उसकी त्रस्त चितवन में एक प्रकार की उद्विग्नता—एक प्रकार का संताप-सा था और मलिन फीकी आँखों में एक प्रकार की पैशाचिक रेखा थी जो रह-रहकर काँप उठती थी ।

निरूपमा ने कहा—“तुम तो न-जाने किस दिन आने के लिए कह गये थे । और आये हो इतने दिनों बाद । तुम जानते हो मेरा एक-एक क्षण किस कष्ट और दुश्चिन्ता में बीता है ?”

सुरेश ने दूसरी ओर देखते हुए उत्तर दिया—“यह दवा बनने में देर हो गयी । इसी लिए न आ सका । सोचा कि दवा लेकर ही जाऊँगा ।”

हाय ! यदि निरूपमा सुरेश के मुँह को उठाकर देखती तो उसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता कि उसके पलक-विहीन कोटरों में वारि-विन्दु उतरा रहे हैं ।

निरूपमा ने कुछ चंचल होकर पूछा—“क्या कोई ‘मेडिसिन’ लाये हो ? क्या उसमें सब ठीक हो जायगा ?”

“हाँ नीरू ! डाक्टर ने तो यही कहा है । मुझे भी यही आशा है कि इसमें सब ठीक हो जायगा”—सुरेश ने भराये हुए स्वर में उत्तर दिया ।

निरूपमा ने कहा—“देखो, मुझे तो अभी विश्वास पड़ेगा, जब सब ठीक हो जायगा । यदि यह हो जाय तो जीवन की बहुत बड़ी यन्त्रणा से छुटकारा मिले । क्या इसे इसी समय पीलू ?” वह शीशी को हाथ में लेकर ध्यानपूर्वक देखने लगी ।

तारे

सुरेश काँप उठा। मस्तक में पसीने की बूँदें झलकने लगीं। वह कठिनता से अपने को संभालकर बोला—“हाँ, इसे अभी पीना होगा। फौरन् पी लो !”

सुरेश को उस समय अधिक बातें करना कठिन हो रहा था। वह अधिक बोलना भी नहीं चाहता था। न जाने कब अवरुद्ध कण्ठ का रुदन फूट पड़े और फिर

सहसा सुरेश ने जेब से एक सिगरेट निकालकर सुलगायी और आँख मूँदकर उसे पीने लगा।

निरुपमा ने ध्यान से उसके मुख की ओर देखा। उसके उदास मुख-मण्डल पर पीतिमा झलक रही थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे हफ्तों से बीमार है। यह देखकर उसका हृदय अपने कष्ट को भूल गया और वेदना भर आयी। बोली—“तुम्हारी तबियत तो ठीक है न ? तुम इतने पीले क्यों पड़ गये हो ?”

सुरेश ने आँखों में बन्द आँसुओं को पीने का यत्न किया और आँख मूँदे-मूँदे ही बोला—“इसी चिन्ता में रहा। तुमने दवा पी ली ?”

“नहीं, पिये लेती हूँ।”—कहकर उसने शीशी मुँह में लगा ली और एक अव्यक्त, अज्ञात आशंका से सिहरते हुए उसे पी गयी। पीते ही उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने उसके मन का सारा भार सारा दुःख दूर कर दिया हो और वह विहंग-काकली-सी स्वच्छन्द, विमुक्त नीलाकाश में उड़ी जा रही है। वह वैठी न रह सकी। आत्मविस्मृत-सी होकर उठी और बिना कुछ बोले पलंग पर लेट गयी और अधमुँदी आँखों से सुरेश की ओर देखने लगी।

एक सौ अट्ठासी

तारे

सचमुच कितनी भोली और सरल बालिका थी । नहीं जानती थी कि जीवन में कितना आकर्षण, विकर्षण, उत्थान, पतन और विष-अमृत होता है । जो उसके प्रेम में पागल हो सकता है वही उसको विष की प्राणघातक बूंदें दे सकता है । सचमुच वह यह सब नहीं जानती थी । अभी अवस्था ही क्या थी !

सुरेश अब बैठा न रह सका । वह उन्मत्त की नाई कमरे में टहलने लगा । उसकी भावशून्य पथराई हुई चितवन निरुपमा के मुख पर केन्द्रित थी । उसके पैर लड़खड़ा रहे थे—उसका अंग-अंग काँप रहा था । सहसा निरुपमा ने अपनी अधमूँदी आँखें खोल दीं और उन विस्फारित नेत्रों को सुरेश के चरणों पर स्थिर कर दिया । उसने अपनी बची-खुची शक्ति लगाकर हाथ के इशारे से उसे पास बुलाया । वह पास जाकर खड़ा हो गया ।

सुरेश ने देखा—निरुपमा की दोनों आँखों से आँसुओं की कुछ बूँदें दुलककर कपोलों पर गिर पड़ीं । उसने सुरेश का हाथ अपने हाथ में लिया और अपने अस्तोन्मुख वक्षदेश पर रख लिया । सहसा निरुपमा का वक्षःस्थल निष्कंप, निश्चेष्ट और वर्क के समान ठंडा हो गया । एक ही हिचकी की बात ! फिर तो सब खत्म था ।

सुरेश झपटकर कमरे से बाहर निकल आया, और दीवार लाँघकर बाहर सड़क पर कूद पड़ा ।

उधर से तीन पुलिस कान्सटेबल आ रहे थे । उन्होंने देखा—गर्ल्स कॉलेज होस्टल से रात के तीन बजे एक आदमी दीवार पर से कूद रहा है, वे बिलकुल पास ही थे । सुरेश ने

एक सौ नवासी

तारे

उन्हें देखकर कतराकर निकल जाना चाहा, परन्तु उन्होंने झपटकर पकड़ लिया। सुरेश ने कसकर एक ऐसा धक्का दिया कि एक कान्सटेबिल तो वहीं भूमि पर लोटने लगा—परन्तु जब दोनों ने कसकर उसके हाथ पकड़ लिये तो वह प्रतिकार न कर सका।

उन्होंने उसी समय होस्टल के चौकीदार को जगाया और पूछा कि यह आदमी कौन है ? चौकीदार सुरेश से न-जाने कितनी अच्छी-अच्छी रकमें इनाम में ले चुका था परन्तु आज तो वह उसे एकबारगी भूल गया। बोला—“कोई होगा चोर ! हमें क्या मालूम ?”

“अच्छा हम इसको कोतवाली में ले जाकर हवालात में बन्द करते हैं। तुम सुबह जगते ही मेम साहब को खबर देना। हम उन्हें रात में तकलीफ देना ठीक नहीं समझते।” सिपाहियों ने कहा।

चौकीदार सलाम करके चला गया।

४

प्रातःकाल मिसेज मेहरा ने आकर होस्टल में देखा सभी लड़कियाँ निरुपमा के रूम के सामने खड़ी हैं। मिसेज मेहरा ने निरुपमा के पलंग के पास जाकर उसे देखा। वे एकबारगी चीख पड़ीं और वहीं सिर थामकर आशंकित नेत्रों से इधर-उधर देखने लगीं।

थोड़ी ही देर के बाद निरुपमा की लाश पोस्टमार्टम के लिए भेज दी गयी। पुलिस ने सारा हाल सुनकर फौरन सुरेश पर मामला चलाया। सुरेश ने अदालत में सारी बातें कबूल

एक सौ नव्वे

तारे

दीं । उसने बता दिया कि उसने ही निरुपमा को दवा के ब्रह्माने विष पिलाया है ।

ठीक समय पर निरुपमा के शव के पोस्टमार्टम की रिपोर्ट आयी । लेडी डॉक्टर ने बड़े तीव्र शब्दों में लिखा था कि मृत बालिका के गर्भ नहीं था । कदाचित् किसी विशेष कारणवश उसे ऐसा भ्रम हो गया था, जिसके कारण उसने आत्महत्या की है ।

जिस दिन सुरेश ने अदालत में यह सुना, उसी रात को वह पागल हो गया । सुबह पहरेवालों ने देखा—उसने अपने सारे कपड़े फाड़ डाले हैं और कमरे में नंग-धड़ंग घूम रहा है ।



मेरा मुँह !

मेरा मुँह !

किस मुँह में कहूँ, कलेजा मुँह को आता है । कोई कहने न लगे कि यह तो छोटे मुँह बड़ी बात है । फिर अपना-सा मुँह लेकर रह जाना पड़े । आखिर किसके मुँह पर कौन हाथ रखेगा ! लेकिन चाहे मुँह की खाने पड़े—चाहे मुँह में घी-शकर हो, कहूँगी जरूर । यह एक मुँहवालों की नहीं, चार मुँहवाले ब्रह्मा और हजार-मुँहवाले शेषनाग एवं इंद्र की भी नहीं । यह है अनगिनती मुँह रखनेवाले समाज की बात । मुँहजोरी की इसमें कोई बात नहीं, अपने मुँह मियाँ-मिट्टू बनने की भी कोई बात नहीं और न यह मुँह बिचकाने-चिढ़ाने की बात है; बात है खाली मुँह की और वह भी मेरे मुँह की । इसमें किसी को मुँह लड़ाने

एक सौ पंचानवे

तारे

की जरूरत नहीं। इसलिए मुँह बंद होने का भी भय नहीं। अब तो अपने ही मुँह से अपनी रामकहानी बताने का समय आ गया।

हाँ, तो वह बड़ी तो मुझे याद नहीं, लेकिन अड़ोस-पड़ोस की बूढ़ी दादियाँ कहती हैं कि जब मैं पैदा हुई थी तब मेरे पिताजी मेरा मुँह देखने के लिए बारह दिन भी नहीं रुके। मेरी छठी और बारहों दोनों साथ-ही-साथ मनाये गये थे और मनाये गये थे इतनी धूमधाम से, जैसे अब तक सुने नहीं गये थे। गाँव घर की व्योहारिनें न-जाने क्या-क्या निछावर कर गयीं। बाबा और पिताजी ने गुप्त और प्रकट रूप से मेरे मुँह पर कितना क्या न लुटाया होगा—यह कोई नहीं जानता। नाइन और महरी अभी तक उस दिन के उपहार के गीत गाया करती हैं। मेरी मा बतलाती हैं कि सूर्यदर्शन के बाद ही मैं मेरे पिता मुझे खुली हवा में लिये लिये टहलाया करते थे और मेरा मुँह देख-देखकर इतने प्रसन्न-वदन दिखायी देते जैसे किसी दरिद्र को किसी गुप्त कोष का पता मिलने जा रहा हो। कहते हैं, दादा और भाइयों के कितने ही इष्ट-मित्रों ने मेरे मुँह की ओर निहारने में न-जाने कितने घंट बिता दिये होंगे।

पिताजी कहा करते थे कि बड़ी भाग्यवान बिटिया है; जब से पैदा हुई, तभी से हमने सुख देखा है। उनकी और मेरी मा की ही राय में नहीं, बल्कि गाँव-घर के सभी लोगों की नजरों में मानों मैं अपने कुटुंब के लिए साक्षात् लक्ष्मी का अवतार लेकर आयी थी। पिताजी की यह आज्ञा थी कि मैं ही उन्हें सोते में जगाया करूँ, ताकि वह पहले उठते ही मेरा मुँह देखें। उनका यह विश्वास मेरे जन्म के बाद ही से दृढ़ हो चला था

तारे

कि किसी अच्छे भाग्यशाली का मुँह देखने से दिन अच्छा कटता है। इसका प्रमाण भी उन्हें मिलने लगा था। जब कभी उनके साथ हँसते-खेलते देर में सोती और इस कारण दूसरे दिन सुबह देर तक सोया रहती, तो वह उठकर सीधे मेरे बिछौने के पास आते और मेरा मुँह देखकर कभी यों ही चापस लौट जाते अथवा कभी-कभी जगा भी दिया करते थे। गाँव के लोग तो यह कहते सुने गये कि बिटिया क्या है, मानों साक्षात् पार्वती आयी हैं।

मेरे पिता ने खुद ही मुझे पढ़ाना-लिखाना आरंभ किया। कहते—स्कूल में जब लड़कियाँ पढ़कर लौटती हैं, तो उनका कुम्हलाया हुआ मुँह मुझसे देखा नहीं जाता। इसलिए हम अपनी रज्जो को स्कूल न जाने देंगे। कहीं कोई हमारी रज्जो को स्कूल में मार दे, तो हमें और अधिक दुःख होगा। मेरे मुँह को सदा प्रफुल्लित, विकसित और हँसते हुए देखते रहना उनके स्वभाव की बात हो गयी थी।

मैं बड़ी हुई। मेरे मुँह की डोंडी पिट चली, दूर-दूर तक खबर फैलने लगी। देवी-देवता पूजने अथवा मेलों-ठेलों में कभी-कभी मुझे भी माताजी और पिताजी अपने साथ ले जाया करते थे। उस समय देखनेवाले मेरी ओर जैसे घूरा करते—मेरी ओर, मेरे मुँह को कोई-न-कोई निहारा ही करता। मैं भी अब छोटी न थी। मुझे भी अब अपने मुँह पर कुछ विशेष बात मालूम पड़ने लगी। जब कभी किसी से बातचीत करते समय मुझे अपनी विशेषता का ध्यान आ जाता, तो महनीयता के आंतरिक भाव से जैसे कुछ अधिक आभा उस पर छा जाती। गालों में ललाई, चेहरे में भराव, आँखों में विकास,

तारे

भृकुटियों में विलास और संपूर्ण आकृति पर जैसे मुहास बरस पड़ता। गति में गंभीरता और मति में मादकता छा जाती। अब मेरे मुँह के देखने का समय सचमुच निकट आ रहा था !

मेरे पिता जहाँ कहीं शादी की बातचीत चलाते, तो मेरे मुँह के देखने की बात ज़रूर चलती। सभी यह कहते—भाई, लड़की देख लेंगे। कहीं मुँह पर शीतला के दाग तो नहीं है—आँखें तो ठीक है ? कुछ लोग मुझे देखने भी आये, देखकर चले भी गये। पिताजी के पास जितने पत्र आये, उनमें एक भी ऐसा न था जिसमें मेरे मुँह की प्रशंसा न की गयी हो। लेकिन शादी-व्याह तो संयोग से ही होते हैं न। पिताजी भी क्या करते।

खैर समय आया विवाह हुआ। मंडप तले से ही बहुतेरे इस ताक में रहे कि दुलहिन घूँघट हटावे और हम उसका मुँह देखें। देखें तो, जितना शोहरा है उतना सुंदर इसका मुँह है भी, या नहीं। पर शील-संकोच की मर्यादा ने बेचारों को निराश कर दिया। बिदा का समय आया, तब भी उन्हें हताश होना पड़ा। मुझे अच्छी तरह याद है, मेरा मुँह देखनेवालों के हृदय में उतावली और उत्साह का तूफान-सा उठ रहा था। मैं यह सब घूँघट की ओट से देख रही थी। आखिर मेरे भी तो मन था। यद्यपि बिदा होते समय मेरा मन बहुत कुछ पिता और माता की ही आकांक्षाओं के साथ रह गया था, तो भी जितना मेरे साथ चल रहा था वह यह सब ताड़ने को काफ़ी था। समुराल पहुँची तो गृहप्रवेश का मुहूर्त नहीं बना। फलतः मैं दूसरे स्थान पर उतारी गयी। पर श्वसुर-गृह तो पहुँच ही गयी थी। नवविवाहिता बहू के लिए श्वसुरग्राम

एक सौ अट्टानवे

तारे

की बधूटियाँ भी सुवासिनें बन जाती हैं। उन्हें उस समय यह भूल जाता है कि हम भी इसी प्रकार नवविवाहिता बधू होकर आयी थीं और हमारा मुँह देखने के लिए भी ऐसी ही उत्सुकता रही होगी, तथा उस समय हमारे मन में भी न-जाने क्या कैसे होता रहा होगा। अस्तु, पहुँचते ही सुवासिनें और बहुएँ—अनुभव-प्राप्त बहुएँ मेरा मुँह देखने के लिए दौड़ पड़ीं। थोड़ी देर के लिए मुँह दिखाना और ठकना, घूँघट उधारना और मंदना ही मेरा व्यापार हो गया और हुआ सब इसी मुँह के कारण। मुहूर्त बना और गृहप्रवेश हुआ, तो अब सासजी तथा उन्हीं की पदवालियों और परदेवाली ललनाओं की बारी आयी। मुँह देखने का व्यापार न-जाने कब तक चलता रहा ! कोई दिन ऐसा न गया, जब दस-पाँच को मुँह न दिखाना पड़ा हो। और, यह यों ही न देखा जाता था। समुरजी ने जब उसे देखा था, तो सोने का कंठा निछावर किया था और सासजी ने सोने का हार। गाँव के सभी व्यवहारी लोगों ने अपने-अपने घर की पुरखियों को भेजा—सभी ने मेरा मुँह देखा और सच मानों, एक भी ऐसी न आयी, जो इस मुँह पर कर्बान न गयी हो, पुरस्कार न दिया हो—कुछ निछावर न किया हो ! एक तो व्यवहार-बात, दूसरे मेरे मुँह का लावण्य। किसी ने आम की फाँकवाली मेरी आँखों की प्रशंसा की, तो किसी ने नाक के मुडौलपने की, किसी ने केवल मुँह की गढ़न ही सराही। किंतु व्यवहार व्यवहार ही है। वह आदान-प्रदान की वस्तु है—स्वरूप है—सही, किंतु इसमें जो विनिमय होता है, वह लौकिक है। अब तक तो उन्होंने मेरा मुँह देखा ही न था, जो सर्वस्व निछावर करते। अब उनकी बारी आयी, मानों इस मुँह के

एक सौ निन्नानवे

तारे

कारण सारे शील-संकोच, लज्जा-स्पृहा, साधना और तपस्या का फल तथा विरोधों का परिहार अब प्राप्त होगा। प्रशंसक अथवा कुरुचिपूर्ण, कुवृत्त नैन-वाणों के जो प्रहार मेरे मुँह, नेत्र, स्वरूप, रूपलावण्य और हृदय पर होते रहे और जो अभी तक मेरी स्मृति के लिए ज्यों-के-त्यों हरे बने हुए हैं। अब उनके लिए सच्चा उपचार मिलने का समय आ रहा था। हाँ, तो अब श्रीमान्—मेरे इष्टदेव की बारी आयी।

उफ़ ! कैसी रहस्यमयी रात्रि थी, जैसे अणु-अणु में विद्युत् भर गयी थी। एक ओर तो लज्जा और शील तथा उत्सुकता और लालसा में द्वन्द्व हो रहा था ; दूसरी ओर वह दोनों दलों के सैनिकों को प्रोत्साहित कर रहे थे। एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह दो विरोधी दलों को मानों लड़ाकर वह उसका आनंद लूटने पर तुले हुए थे। न-ज्ञान कितनी बार—मुझे अच्छी तरह याद है—उन्होंने प्यार, सहानुभूति, लालसा और मदभरी वाणी में कहा था—जरा मुँह तो खोलो—घूँघट तो उठाओ। और, न-ज्ञान कितनी बार मैं लज्जा और शील में नीचे गड़ी एवं उत्सुकता तथा लालसा से ऊपर उठी थी। किंतु आखिर मेरे विजयी मुख की ही जीत हुई। उन्होंने अनायास भट मेरा घूँघट उलट दिया। और तब—हाँ तब—वही बतलाते थे जैसे—प्रकाश में भवन आलोकित हो उठा हो, तब जैसे शय्या और भवन के समस्त उपादान दूध से नहा गये हों। उसी समय उन्होंने मेरे मुँह की शारदीय मयंक में उपमा दी थी। मेरी आभा को—मुखमंडल की उज्ज्वलता को चैत्र की चाँदनी की भाँति समझा और सराहा था। उस रात को मैंने अपने मुँह को पाप की भाँति परदे

दो सौ

तारे

की ओट में रखने की प्रतिक्षण चेष्टा की, और उन्होंने पुण्य की भाँति उसको प्रकाश में रखने का प्रयत्न जारी रखा।

केवल उसी रात को नहीं, आगे भी प्रायः यही क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा, और सदैव ही वह उसे पुण्य की भाँति आलोक में रखने की तथा मैं सदा एक रहस्य की भाँति अपने अवगुंठन-संसार में सीमित रखने की चेष्टा करती। हाँ, उनकी चेष्टा में आह्लाद की प्रेरणा थी और मेरी चेष्टा में संकोच की। मुझे यह बात इस जीवन में नहीं भूल सकती, जब वह ललक-कर कहते कि मेरा मुँह सच्चे साधक की उस साधना की भाँति पारदर्शी है, जो हृदय की निर्मलता को प्रतिबिंबित करती है। कभी वह मेरे मुँह की तुलना मयंक-मंडल से करते; किंतु साथ ही कह उठते नहीं, कलंकी मयंक इस मुँह के सामने है, तिरस्करणीय है। कभी कमल से कभी गुलाब के फूल से—न-जाने किस-किस से वह तुलना कर डालते। उन्हें तुलना करने में कुछ विचित्र विनोद ज्ञान पड़ता और मैं स्पष्ट देखती कि उस समय उनका सिर एक अव्यक्त अभिमान से ऊँचा उठ रहा है। लालिमा, लावण्य, उज्ज्वलता और उत्कर्ष, सब एक साथ मेरे मुँह पर उन्हें दिखते और सबको एक साथ लेकर जब वह संसार की विभूति-संपदा से, सौंदर्य से तुलना करते, तो यावज्जगन उन्हें तुच्छ ज्ञान पड़ता। मुझे वह—हाँ, उन्हीं की वह अट-खेलियाँ याद हैं जब वह मेरे मुँह को चंद्रमा की भाँति इसलिए बना डालते, ताकि अपने उत्कंठित नेत्रों का चकोर को आँखों की नाई उपयोग करने में उन्हें कोई बाधा न पड़े।

दो सौ एक

तारे

मेरी आँखें—हाँ, यही आँखें उनके लिए पीयूषकुंड थीं। वह कहते, उनमें स्नान कर मेरे नेत्र प्रेमसाधित हो जाते हैं। मीन, मृग, खंजन, बादाम, आम की फाँक यहाँ तक कि 'अमी हला-हल मद भरे, स्वेत म्याम रतनार' आँखों को भी वे मेरे भृकुटीविलास के एक साधारण बंक पर निछावर कर देते। आह ! उनका वह हृदयोत्सर्ग मुझे रुला देता है, जब वह मेरी नामिका पर शुक-तुंड, होठों पर प्रवाल और विद्रुम के पुष्प चढ़ा देते—उसी प्रकार जिस प्रकार निर्मोही होकर जैसे कोई भक्त अपनी आराध्य भगवती पर आत्मश्रद्धा का उपहार चढ़ाकर निःस्पृह भाव से लौट पड़ता है। चिबुक पर तो वह मन्मथ के चाबुक को ही चढ़ा देते—कहते, चाबुक से भी अधिक इसमें प्रेरणा है। और तिल—तिल पर तो तिल ही खप सकता है। वह विह्वल होकर कह उठते कि जैसे संसार का सारा कलुष सिमटकर आत्माद्वार के लिए मेरे मुँह की शरण लेने आया है ; इसी मेरे मुँह की पुण्यभलिला आभा में विश्व की समस्त कालिमा अपने को छिपाये रखने के लिए आयी हुई है। वह कहते—जैसे अधिक-से-अधिक आलोक में सघन-से-सघन अंधकार आलोकित हो उठता है, उसी प्रकार मेरे मुखालोक में सृष्टि की सारी कालिमा भी आलोकित होने के लिए मानों संकोच से संकुचित होकर स्थिर हो गयी है। आह ! वह दिन ! वह युग—जीवन का स्वर्णयुग ! मेरा मुँह एक ओर और शेष जगत् एक ओर। संसार की सारी विभूति एक पलड़े पर रखी रहती, दूसरे पर मेरा मुँह ; और विभूति का पलड़ा मुँहवाले पलड़े से सदा हलका पड़ता। इसका कारण और कुछ नहीं, मुँहवाले पलड़े पर

दो सौ दो

तारे

मेरे इष्टदेव का प्रेम-मकरंद—प्रेम-सौरभ—प्रेम-रजकण भर-भरकर, गिर-गिरकर मेरे मुँह को भाग्य पर विजयी बनाता रहता ।

किंतु किंतु—फिर भी मैं अपना मुँह लुकाने की चेष्टा करती । इच्छा होने पर भी भर-आँख उन्हें देखने में सकुच जाती और जितना ही मैं सकुचती, पीछे हटती, उतना ही वह अधीर हो उठते—यहाँ तक कि जबर्दस्ती मेरा घूँघट उलट देते ।

×

×

×

किंतु आज तो वह एक भूतकालीन गुपमा है । इममें आशा का उन्माद नहीं, निराशा का आहत उत्साह है । आज वह मुँह नहीं है । वह मेरा ही मुँह है, यह भी नहीं जानती । कभी यही मेरा मुँह था—यह भी साक्षान् संदेह बन गया है, तब क्या मैं बही हूँ—यह भी अज्ञात है । न वह मुँह है, न वे दिन, न वह ... वह—इस मुँह को मुँह माननेवाले आज...—नहीं, कुछ नहीं । आज उज्ज्वलता अंधकार में परिणत है । शरच्चंद्र पर आज ग्रहण लग गया है और ग्रहण की तो अवधि होती है, किंतु यह असीम है—सीमा के कोई लक्षण नहीं जान पड़ते । आज मेरा मुँह अशुभ-दर्शन है । सोकर उठते ही इमं देखनेवाले पिताजी मांजूद हैं, किंतु उनका यह विश्वास उठ चला है—नहीं, उठ ही गया है । जो कभी मेरा मुँह देखकर मुझे लक्ष्मी का अवतार समझते थे, वे ही आज इस दरिद्रता और दीनता की मूर्ति मानते हैं । जो इस पर कंठहार और आभूषण लुटाते थे, वे आज इस लुटा हुआ जानकर व्रणा में देखते हैं । चंद्रमा का कलंक आज मिट गया है, संकुचित

दो सौ तीन

कमल मेरे मुँह के सामने लज्जा में सिकुड़ जानेवाले पद्म—
 आज विकसित है । कितना परिवर्तन है—न केवल संसार में,
 प्रत्युत नियति में ! आज प्रकृति बदल गयी है । न वह स्वरूप,
 न वह कार्य, न वह स्वभाव । सब कुछ परिवर्तित । विश्वधर्म
 और मानव-धर्म सबमें महान परिवर्तन । न इस मुँह को कोई
 देखने की लालसा करता है, न देखने का खयाल ही करता है ।
 और मैं—मैं भी अब इस पुण्य की भाँति प्रकाश में लाने की
 चेष्टा करती हूँ ; किंतु प्रकट हो जाने पर भी इसमें संसार
 आलोकित नहीं होता । रहस्य की भाँति मैं इसे छिपाती भी
 नहीं, स्वयं अदृगुठन उतारकर फेंक देती हूँ—फेंक चुकी हूँ । किंतु
 इसकी ओर निहारनेवाला कोई भी नहीं । कितना दयनीय
 विपर्यय है ! तब शैशव मेरे इसी मुँह के साथ अटग्रेलियाँ
 करता था, यौवन इसे अपने वत्त में मुलाकर तृप्त होता था,
 समय इसके संपर्क से भाग्यशाली बना था, प्रकृति इस पर
 निछावर होती थी ; मनुष्य-स्वभाव सत्पुण्य आतुरता में इसका
 दर्शन करता था, किंतु आज शैशव घृणा के साथ इसका
 तिरस्कार करके चला गया है, यौवन इसे ठुकराता है, समय
 इसे देखकर काँप उठता है, प्रकृति स्वयं इसी की बलि चाहती
 है, और मनुष्य-स्वभाव की आतुरता ने विरक्ति का रूप धारण
 कर लिया है । आह ! यह कठोर परिवर्तन—इतनी विकृति !
 अब यह अशुभ दर्शन है—अशुभगति है । आज इसकी बाँझा
 ही अशुभ है—सांगोपांग अशुभ, न वह शुकतुंड-सी नासिका
 है, और न वे कल्पना के लोक में विचरण करनेवाली आँखें ।
 प्रकृति के साथ इन्द्रियों ने भी विपर्यय प्राप्त कर लिया है ।
 तिल आज तेली के तिल की भाँति पिस रहा है—किंतु उसमें

रस नहीं। कभी किसी समय संसार का सारा कलुष संकुचित होकर मेरे मुँह की शरण लेने आया होगा, यह मानने को आज जी नहीं चाहता। विपरीत इसके जान पड़ता है, जैसे विश्व का सारा कलुष मेरे मुँह पर निवास कर रहा है—मुझे पाप की मूर्ति बना रहा है। मेरे मुँह ने उसे पुण्य के आवरण से ढककर मानों उसका जो अस्तित्व मिटा दिया था आलोक से उसकी कालिमा को नष्ट कर दिया था—उम्मी का बदला वह ले रहा है। उम्मी बदले की प्रेरणा से मेरे मुँह के आलोक को सदैव के लिए आच्छन्न कर लिया है—सघन अंधकार में आच्छादित कर दिया है। इसीलिए मेरे मुँह पर संसार को अंधकार-ही-अंधकार दिखता है—ऐसा अंधकार जिसमें पाप का, पापमयी वामनाओं का अड्डा रहता है। तिल ताड़ होकर कलुषमय हो गया। आह ! यह सब कुछ न होता—मेरा यह मुँह न होता, तब विश्व की प्रतारणा—यह मूक-वेदना तो न होती—यह मानसिक क्रांति, यह उद्भ्रांति तो न होती। न यह होता और न वह सब होता—वही सब, जो इस मुँह पर कभी निछावर था। रात इतनी लंबी है कि जान पड़ता है दिन कभी उगा ही नहीं। आज रज्जो रज्जो नहीं। मेरा यही मुँह आज अंधकार, पाप, कलुष-कालिमा, घृणा, बिडंबना और न-जाने किस-किस से आच्छादित है। आँखें आज अश्रु-कुंड बन गयी हैं, जहाँ मे मर्मस्थल की अबाध पीड़ा अजस्रधारा में रस रही है, जीवन को घुला-घुलाकर अथक स्रोत बनाकर बहा रही है; कपोलों पर जैम अश्रुप्रवाह की क्षीणकटि सरिता, उत्ताप के कारण, अपनी शुष्क नीली प्रगति छोड़ गयी है।

×

×

×

तारे

इतने में किसी ने पुकारा—रज्जो, चल उठ, बहुत बिलंब हो
गया—चल, मुँह धो डाल ।

यह रज्जो की अंतरात्मा की पुकार थी ।



दो सो छः

अपराधी

अपराधी

डॉक्टर रजनी ने थर्मामीटर बड़े जोरों से उठाकर पत्थर के पक्के फर्श पर पटक दिया और पल्लंग पर पड़ी हुई अपनी मरणोन्मुखी पत्नी के शरीर से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगे । अपनी उलटती हुई आँखों में एक बार सचमुच ही मानों उस रोगिणी ने शून्य भरकर देखा और हिचकते हुए कहा —देवता ! मेरे स्वामी, मैं तो अब चली !

अपने आकुल क्रन्दन में बहते हुए डॉक्टर रजनी ने, कौन जाने, इन शब्दों को ठीक से सुना भी या नहीं ।

×

×

×

आज दो महीने से डॉक्टर रजनी जिस चिंता में घुलते

दो सौ नौ

तारे

रहे, सत्य ही रात्रि की इन अंधकारमयी घड़ियों में उसका अंत हो गया। उनकी शादी हुए आज आठ साल हुए। आज ही के दिन वे दोनों सदा के लिए इस मुख-मूत्र में धड़कते हुए हृदय से बँधे थे। और आज ही—ठीक आठ वर्षों के बाद—वह मुख-मूत्र सदा के लिए टूट गया।

आज दो महीने में रजनी देखता आ रहा है कि उसकी प्राणप्यारी 'रुबी'—जिसे उमने आज से ठीक आठ साल पहले, आज ही के दिन, कदाचित् इसी समय रात की मंगल-मयी घड़ियों में अपने प्राणों में बिठाया था, जिसे वह तन-मन से अपने समस्त अनुराग-अमृत स्नेह से प्यार करता था—दिन-प्रतिदिन घुलती जाती थी। कोई रोग नहीं—कोई विकार नहीं; फिर भी शरीर-शक्ति, स्फूर्ति और प्राणों का यह क्षय देखकर रजनी आशंका से पागल हो उठता था। अपने ऊपर पूर्ण विश्वास न करके उसने सभी बड़े-बड़े डॉक्टर, वैद्य और हकीमों को दिखाया। लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में ले जाकर अपने प्रोफेसरों और प्रिंसिपल सबको कंसल्ट किया, लेकिन कहीं कुछ नहीं। कोई रोग भी नहीं—कोई रोग होने की संभावना भी नहीं। फिर यह घुलना—यह सूखना—यह निचुड़ना कैसा ! पागल हो उठने की बात ही है। ऐसी सुंदरी, सुशीला, स्नेहमयी स्ती के लिए भला किसका कलेजा नहीं फट जायगा ! ऐसी अपने चरणों की दासी—सेविका के लिए कौन नहीं मर मिटना चाहेगा ! आज उसी असह्य वेदना का सदा के लिए—युग-युग के लिए अंत हो गया है। उसकी प्राणप्यारी 'रुबी' सदा के लिए उसे छोड़कर कहीं चली गयी है—कहाँ ! इसे कौन जान पाया है।

दो सौ दस

तारे

रजनी ने एक बार आँसुओं से धुँधले दोनों नेत्रों को अच्छी तरह 'रूबी' के आँचल से पोंछकर उसके मलिन पीत निस्तेज मुख की ओर देखा। जीवन के समस्त आवेग-प्रवेगों से मुक्त, अनंत शून्य की भाँति भावहीन यह मुखमंडल कितना सुन्दर और कारुणिक है। आज शाम ही में उसका बोलना बंद है और तभी से वह जीवन-मृत्यु के भूलें में इस भयानकता के साथ भूलती रही है। उसके जीवन-संगीत की यह मधुरतम रागिनी मृत्यु के भूकंप भैरव-गर्जन में सदा के लिए विलीन हो गयी—छोड़ गयी है उसके लिए केवल स्मृतियों की दाहक कंटक-शय्या। परंतु यह चिंता, यह उद्वेग, यह उतावली, यह घबराहट भी कैसी विचित्र थी। यह परेशानी—यह बहसत कैसी विलक्षण थी जिसका अंत हृदय में धूनी-सी धधका दे रहा है। इससे तो यही अच्छा था, यही सुखकर था कि इस वेदना का—इस चिंता का कभी अंत ही न होता। और यदि इसका अंत ही होना था, तो मेरा अंत भी हो गया होता।

टेबिल पर जलती हुई मोमबत्ती की लहकती हुई रोशनी में रजनी अपने विचारों की आँधी में पत्ते की भाँति इधर-उधर उड़ने लगा। उस कमरे में प्रलय की-सी साँय-साँय एक निस्सीम उन्मुक्त गति से डोल रही थी। रजनी ने अपने ढलकते हुए आँसुओं को बार-बार पोंछकर 'रूबी' के शरीर पर एक स्थिर दृष्टि डाली। उसकी बौखलाई हुई आँखों में धीरे-धीरे एक प्रकार की ज्वाला-सी जलने लगी। आँखों की वह जलराशि वह अश्रुधारा झुलस-सी गयी। उसने अपनी मृत पत्नी का सिर अपनी गोद में रख लिया और सावधानी से दीवार पर टेक लगाकर बैठ गया। उसकी आँखों में एक

तारे

भलक आती थी—एक ज्वाला जलती थी और फिर बुझ जाती थी । स्थिर दृष्टि से वह रूबी के स्पंदनहीन शरीर को देख रहा था और आत्म-मरण-जन्य प्रवाह में डूबने उतराने लगता था । ऐसा ज्ञान पड़ता था जैसे इसका कभी अंत ही न होगा ।

रूबी के करुण म्लान फीके कलांत शरीर की ओर देखकर रजनी ने सोचा—आह, यह वही रेणु है जिसे उसने प्यार-प्यार में 'रूबी' कहकर पुकारना शुरू किया था । सुरपरियों-सी सौंदर्यमयी यह वही अनंगवती है, जिसने एक दिन शुभ्र अम्लान ज्यात्सना-सी आकर, फैलकर, अपना सोलह कलाओं से आलोड़ित मुखचंद्र दिग्याकर उसे मोल-सा ले लिया था । रूप के वासंती मलय-स्पर्श से सुवासित इस सौंदर्य-निकुंज की सारी कुसुम-मंजरियाँ आज कहाँ चली गयीं ! वह सौरभ वह मधु—वह मद—वह जीवन—वह रस ! कहाँ है आज वह महाप्राण, जो इस सूने एकांत और बड़े ढँगले को—उसके कण-कण को मुखरित-सा किये रहता था ; जिसके एक-एक पलक-निपात के साथ ही मानों इसमें भी जीवन की तरंग-मयी रागिनियाँ फूट पड़ती थीं । वह कलरव—वह क्रीड़ा—वह हिल्लोल आज सदा के लिए उसकी गोद में सिर रक्खे सो रही है । आज सुबह से ही ज्वर की निदारुण ज्वाला में सुलगती हुई रूबी की हालत देखकर रजनी पल-पल में अपना धैर्य खो रहा था । घर के लोग इतना समझाते थे, लेकिन उसकी वाष्पाकुल आँखें छल-छलाकर छलक उठती थीं । संध्या के समय जब रूबी की सारी बेचैनी—सारी छटपटाहट और सारी उद्भ्रांति एकाएक कम हो गयी तो उसे कुछ शांति

दो सौ बारह

तारे

मिली। अपने 'इंजेक्शन' की सफलता पर रजनी प्रसन्न हो रहा था कि रुबी ने अपने नीलोत्पल के समान नेत्रों में ममता के शून्य-वैभव की नीली किरणें बिखराकर एक बार रजनी को पुकारा। रजनी एकाएक मुख के इस धक्के को न सम्हाल सका और लड़खड़ाता हुआ चारपाई के पास कुर्सी पर बैठ गया।

रुबी ने धीमे कंठ से कहा—तुमने सुबह से कुछ खाया कि नहीं ?

सचमुच ज्वर के भयंकर आवेग में वह यह भूल गयी थी कि रजनी ने दो दिन से मुँह में कौर नहीं दिया।

रजनी ने कहा—हाँ, सुबह खाया था। इस समय भूख नहीं है। तुम्हारी तबियत कैसी है। दर्द !

रुबी ने मुस्कराने की चेष्टा की। कुछ-कुछ मुस्करायी भी। मेरी तबियत यदि अभी नहीं तो रात बारह बजे तक बिलकुल ही ठीक हो जायगी। शायद यह ज्वर और दर्द बिलकुल ही न रह जाय। रुबी ने कुछ ऐसी सरलता से यह कहा कि रजनी समझ ही न सका कि वह इस बात पर हँसे या रोये।

रुबी ने कहा—तुमसे एक बात कहनी है। कई दिनों से नहीं कह पाती हूँ। लेकिन आज कह ही डालूँगी। कौन जाने फिर याद रहे या भूल जाऊँ। रजनी धड़कते हुए हृदय से उसकी ओर देखता रहा। उसके हाथ रुबी के स्नेहहीन रुक्त केशों पर फैल रहे थे।

रुबी ने कहा—देखो ! संसार में तुम जैसा स्वामी पाकर भी न-जाने क्यों मुझ अभागिनी ने शांति न पायी। सदा चित्त में एक हूक-सी उठती रही और किसी अविज्ञानित कल्पना से मैं

दो सौ तेरह

तारे

उद्भ्रांत-सी बनी रही । सदा मुझे यही कसक बनी रही कि मैं तुम्हारे श्रीचरणों की सेवा पूर्ण भक्ति, पूर्ण श्रद्धा और भावना के साथ न कर सकी ।

रजनी से न रहा गया । उसने रूबी का कुम्हलाया हुआ मुख चूम लिया और उसके मस्तक पर मानों अपने प्राण फेरते हुए बोला—तुम अच्छी हो जाओ मेरी रूबी ! मैं फौरन् ही तुम्हें योरप ले चलूँगा । एक बार तुम्हें बचाने के लिए आसमान भी चीर डालूँगा । मुझे और कुछ नहीं चाहिए मेरी रानी ! मेरी रूबी ! तुम सरीखी देवी—सतवन्ती को खोकर मैं जी न सकूँगा ।

“सुनो तो मेरे देव” !—रूबी ने काँपते हुए कहा—“न-जाने कैसी अज्ञात किंतु तीव्र व्यथा लेकर मैं संसार में आयी और वही लेकर मैं यहाँ से जा रही हूँ । लेकिन एक बार तुम्हारे शतंजीवी चरणों से क्षमा की भीख माँगती हूँ । यह मेरा अपराध क्षमा हो स्वामी—यही विनती है ।” कहते-कहते रूबी ने एक विचित्र उत्तेजना में लटककर स्वामी के पैरों का स्पर्श लेकर मस्तक में लगाया । रूबी शिथिल-सी होकर निश्चेष्ट हो गयी । रजनी ने घबराकर उसे उठाकर गोद में बिठा लिया । इसके ठीक छः घंटे बाद रूबी सदा के लिए उसे छोड़कर चली गयी !!

रजनी को बीते दिवसों की मर्म-मधुर कहानियाँ—स्मृतियाँ एक-एक करके याद आने लगीं । इस दुःखभरी घड़ी में जब वह अपने ही निदारुण दुःख में क्षतविक्षत विक्षिप्त बैठा था, जीवन के दुःख-सुख के दृश्य एक-एक करके चलचित्रों की भाँति नेत्रों के सामने घूमने लगे । ऐसी ही रात वह भी थी । ठीक आज से बारह माल पहले । अखंड कालस्रोत में बहता

हुआ यह मानव-जीवन भी कितना विचित्र, कैसा अजीब है। नित-नित नूतन हो-होकर यह अपने को भूला-सा रहता है। आज से बारह साल पहले रजनी के जीवन की एक ऐसी ही रात थी। लेकिन जीवन में और कभी जिसकी सुध नहीं आयी, आज अपनी प्राणेश्वरी रूबी के मृत शरीर के सिरहाने एक असह्य वेदना से तिलभूते हुए वह उसी व्याधि से आंदोलित हो उठा। नव-यौवनकाल की रंगीन घड़ियाँ फिर सजीव एवं साकार हो उठीं।

बारह साल पहले की बात है। रजनी उन दिनों लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में पढ़ता था। नवयौवन के उद्दाम बंधनहीन निर्वध प्रवाह में बहनेवाले विद्यार्थियों के हृदयों में जैसी उच्छ्वसित आवेगमयी हिलोरें और रंगविरंगी उमंगें लहराया करती हैं, उन्हें विद्यार्थियों के मित्रा कौन जान सकता है। रजनी भी मदभरी जवानी की तरंगों में पागल की भाँति बहता हुआ अपने ही रोमांस में मस्त रहता था। धनी माता-पिता का इकलौता लड़का, स्वस्थ और सौ-दो सौ में एक ही खूबसूरत। वस और क्या चाहिए। मुखभोग की अनंत कामना, हृदय की उन्मत्त भावुकता और सौंदर्योपासना — वस, यही जीवन का लक्ष्य था। इंद्रधनुष की भाँति स्वर्ण-किरण-कल्लोलों पर बहनेवाला रजनी का हृदय भावना का नशीला सोम-प्रवाह सजा-सजाकर विश्व के साथ क्रीड़ा किया करता था। उसकी सुकुमार स्वर्णात्मा परी की भाँति रूप की रजतोज्ज्वल वीचियों में विलास किया करती थी और उमड़ती हुई जवानी से दीप्त अपने सौंदर्य को देख-देखकर वह मानिनी बालिका के समान और भी मस्ताना हो जाता था।

तारे

हाँ, तो यह जिन दिनों की बात है, उन दिनों रजनी लखनऊ के मेडिकल कालेज में पढ़ता था। जीवन की विभीषिकाएँ और समस्याएँ उससे कोसों दूर थीं। सुख, ऐश्वर्य, विलास और आमोद की गोद में पला हुआ भावुक रजनी सौंदर्य पर दीवाना हो जाता था। अपनी ही अंतर्वासना और अंतर्लालसा में उद्भ्रांत रजनी जिस समय लखनऊ की सड़कों में घूमता, उस समय एक अतुलित उल्लास और बेहोश कर देनेवाले उजर से वह मदमत्त होकर भूमने लगता। आह ! इसमें कितना सुख था—कितनी तृप्ति थी—कितना माधुर्य था।

सावन के नये मेघों से आवृत दिनों में रजनी अपने कॉलेज की टीम के साथ लीगमैचेज़ खेलने के लिए दिल्ली आया हुआ था। अपनी टीम का कैप्टेन होने के कारण रजनी का बड़ा मान था। उसके खेल पर उसके साथियों को नाज़ था। यहाँ वे लोग ठाट से एक होटल में ठहरे थे।

रजनी तिमंजले के जिम रूम में ठहरा हुआ था, उसी के सामने, पर ठीक बगल में, जो कमरा था वह आज दो दिन से बंद था। लेकिन आज शाम को आठ बजे जब रजनी खेलकर आया तो उसने देखा, उस कमरे की खिड़की पर एक १४ साल की कपूर की भाँति गौर लावण्यमयी बालिका खड़ी सड़क की ओर देख रही है। उसे देखकर यही मालूम होता था कि संध्या की इन शांत करुण और एक मीठे अवसाद से भरी घड़ियों में कोई किन्नर-बालिका इस भूमंडल पर उतर आयी है।

रजनी ने एक बार उसकी ओर भर नेत्र देखा। रूप की इस अनिंद्य छवि के सामने सचमुच ही उसकी आँखें झेंप गयीं।

दो सौ सोलह

तारे

संध्या की उन्मुक्त घड़ियों में नवल प्रभात की हेमांगिनी श्री देखकर किस भावुक रसिक का भावावेग उच्छ्वसित और उत्थित न हो पड़ेगा । उसकी ओर अपने मुग्ध नेत्रों को गड़ाये हुए रजनी अपने कमरे के भीतर चला आया ।

अपने कमरे की खिड़की के पास खड़े होकर रजनी ने एक बार फिर देखा--जैसे बालिका के चारों ओर चाँदनी का समुद्र बिछा हुआ हो । अपनी ही मीठी छाँह में पुलकित मल्लिका की भाँति उसके अवयवों से रस का जो मधुर स्रोत बह रहा था, सचमुच वह बड़ा ही मादक था । रजनी ने एक-मे-एक अलवेली नवेली युवतियाँ देखी थीं, परंतु इस यौवन के मधुवन में प्रथम चरण रखती हुई बालिका को देखकर वह निहाल हो गया था । उसकी उमड़ती हुई अंतःनिःसृत मधु-मदिरा मानों मस्ती का वितरण करती हुई एक बार संपूर्ण विश्व को पागल बना देने पर तुली हुई थी । सचमुच रजनी कुछ-कुछ आत्म-विस्मृत हो चला ।

इसके बाद रजनी रोज ही जब तब उस बालिका को देखता । उसके होटल और उस बालिका के मकान के बीच में एक पतली गली थी । इसी कारण उसकी खिड़की से बालिका के कमरे का पूरा दृश्य दिग्वायी देता था । अपने कमरे में पड़ा हुआ रजनी घण्टों उस प्रभात-कालीन नव-विकसित कमलपुष्प के समान नेत्रवाली किशोरी को निहारा करता और वह भी अपनी ही सरलता में जूही-वन के समान गमकती हुई मंद भोली आँखों में एक विचित्र विस्मय, प्रश्न और अलहड़पन लेकर संगमरमर की प्रतिमा-सी उसकी ओर देखा करती । कभी-कभी न-जाने क्यों उसके प्यारे-प्यारे अधरों

तारे

में मोती-सी मुस्कान दौड़ जाती। परंतु न तो रजनी ही उससे बोल सका और न उस बालिका ने ही किसी दिन उससे बातचीत की। हाँ, यदि रजनी की ओर वह विस्मयभरे मद-भोले नयनों से देखती होती और रजनी की दृष्टि उस ओर उठ जाती, तो वह कंटकित होकर सिहर जाती। लज्जवंती लतिका-सी अपने में ही गड़कर वहीं ज़मीन की ओर टक-टकी लगाये खड़ी रह जाती और किसी अविज्ञानित माया के विवश आकर्षण में बँधकर वह वहाँ से हट भी न सकती। मुग्धा मुग्धमृगी-सी चकित खड़ी रह जाती। रजनी अपने प्राणों को—शरीर के सारे चैतन्य को, गति को, कंपन को अपने बड़े-बड़े नेत्रों में खींचकर अपलक उस निष्कंप ज्योति-शिखा की ओर देखा करता। एकांत कुंज की यह चंद्रकली एक कोमल माधुर्य और सौंदर्य की भावना से उद्दीप्त हो-होकर मुक्ता की भाँति चमक उठती। अलकों की शांत विभावरी में रूपसरसी का ईपन् कंपित जल फड़क उठता।

सावन की भ्रमकती हुई अँधेरी रात में अलम भाव में एक विचित्र व्याकुलता के साथ पड़े-पड़े सिगार पीते हुए रजनी देखता कि वही रसवती बालिका खिलती हुई चैत्र की चाँदनी की भाँति खिड़की पर आती है—नवयौवनाओं की गोपन-लालसाओं से कसकती हुई, और एक अजीब सलोना-पन बरसाकर चली जाती है। तीसरे पहर आकाश में मदभरे काले-काले मेघ घिर आते थे और रिमझिम-रिमझिम मधु की बूँदें पड़ने लगती थीं। उस समय वह रस-आवेशिनि बालिका रूपघटा के समान उमड़ती हुई मानों अपनी खिड़की पर घिर आती थी। परंतु उसकी एक-एक चितवन में न-

दो सौ अठारह

तारे

जाने कितना भोलापन था—न-जाने कितनी सरलता थी। यौवन के मतवाले कर देनेवाले रसावेगों से अपरिचित, शेफालिका की भाँति अपने ही परिमल भार से थरथराती हुई, नवयौवन-उभार के व्याकुल आनंद से उसके चंद्र-पुष्पोज्ज्वल—विद्युत्-ज्योत्स्ना की भाँति लहरीले अंगों में जो क्रीड़ा की विपुल तरंगें उठती थीं, उनके सामने मेघों का केलिसंकेत रजनी को तनिक भी आकर्षित न करता था। वह उस मधुवन की पटरानी को आँखों में सदैव के लिए भर लेना चाहता था—अपने हृदयस्पंदन में प्रविष्ट कर लेना चाहता था।

पंद्रह दिन तक दिल्ली में लीगमैचेज़ खेलकर और शील्ड जीतकर रजनी जिस दिन दोपहर ११ बजे की गाड़ी में चलने लगा, उस दिन न-जाने क्यों उसके हृदय के मुकुमार स्थल किसी अविजानित सजल मोह के प्रसार से आर्द्र हो गये। उसने देखा—वही रसवती कुमारी उन्मन-सी होकर बार-बार क्षितिज की नीलांजन-वर्ण-धारिणी रेखा की ओर देख-देखकर, अपनी वाष्पाकुल चितवन और हृदय के अधःस्थिते उसाँसों को बिखेर रही है। बार-बार आती है और खिड़की पर खड़ी होकर ताँगों पर लदते हुए उनके सामान को उदास-सी होकर देखती है; फिर लौट आती है और इस प्रकार मानों अपने ही उर में नहीं समाती। जिस समय रजनी का ताँगा चला, उस समय रजनी की भी आवेगभरी आँखें ऊपर खिड़की पर स्थिर हो गयीं। कुमारी ने अपनी जावक-राग-रंजित मृदुल हथेली से अपने नेत्रों को न-जाने क्यों ढक-सा लिया।

रजनी का ताँगा आगे बढ़ चुका था।

×

×

×

तारे

रजनी के जीवन में और भी दो-एक ऐसी ही घटनाएँ घट चुकी थीं, परंतु इस बालिका को वह न भूल सका। रह-रहकर उसे कुछ सूना-सा प्रतीत होता था। जब-जब उस किशोरी की सुध आती तब-तब न-जाने किस अव्यक्त रोदन से वह फूल-फूलकर उफनाने लगता। इसके बाद भी वह दिल्ली गया। उसी होटल के उसी रूम को खाली कराकर ठहरा। लेकिन उस मकान में वह चंपकवदनी किशोरी फिर न दिखी। अंत में यह सुनकर कि वह परिवार वहाँ नहीं है, वह खिन्न होकर लौट आया।

जीवन में न जाने कितने ऐसे अवसर आते रहते हैं, परंतु मनुष्य का हृदय ही ऐसा है कि एक मधु विस्मरण की मूर्च्छना में—विस्मृति के आवेग में वह नित्य नयी पुलक तरंगों पर खेला करता है। रजनी भी कुछ दिन के बाद उस बालिका को भूल गया। संसार में सौंदर्य की तम्बीरों की कमी नहीं है। सिनेमा के चल-चित्रों की भाँति एक-से-एक नवेली अलबेली अनंगवती परियाँ नेत्रों के सामने आया करती हैं और फिर चली जाती हैं। विश्व के इस अभिनय का कभी अंत नहीं होता। यहाँ किसको देखे, किसको प्यार करे और किसे आँखों से लगाये—यही नहीं समझ में आता। न जाने कितना सौंदर्य—कितनी अनिष्ट रूपराशि—कितनी शोभा और छवि रोज आँखों के सामने समुद्र की तरंगों की भाँति आ-आकर बिछ जाती है। नौजवान आदमी किस-किसको याद रखे—किस-किसको देखे—किस-किसको सराहे और किस-किसको प्राणों में बिठाए। लोग कहते हैं कि स्वर्ग में अपूर्व सौंदर्य है—अजस्र मादकता है—न-जाने कितना

तारे

यौवन है। परंतु कौन कहता है कि स्वप्नों की इस छायासृष्टि में जिसे संसार कहते हैं वही ऐश्वर्य-सुषमा के शत-शत स्वर्ण-प्रपात नहीं हैं ! यहाँ कदाचित् अधिक मूर्च्छना, अधिक मदिरा और अधिक उन्माद है। अंतर केवल यही है कि वहाँ पाप भी पुण्य बन जाता है और यहाँ.....हाँ ! तो तारुण्य, सौंदर्य और स्वर्णकांति की इस अमराई में अपने को खोकर यदि रजनी उस कुमारी को भूल चला तो क्या हुआ। भूलना हृदय का धर्म है। और फिर इस प्रथम वसंत में !

दिन जाते हुए देर नहीं लगती। एक करुण आह की तरह किरणें आती हैं और अपना जाल बनाती रहती हैं। जीवन एक पहेली की भाँति स्वयं एक विडंबना बनकर इस आवर्तन को—विराट् घूर्णिचक्र की इस प्रलय-गति को देखा करता है। धीरे-धीरे तीन साल बीत गये। रजनी का आखिरी साल था। इस साल पास होकर रजनी प्रेक्टिस करेगा। अपने प्रोफेसर्स का विशेष प्रिय और कृपापात्र रजनी अस्पताल के मरीजों के बड़े-बड़े सिरियस केसेज में भी ड्यूटी के लिए पहुँच जाता था; उसकी प्रतिभा और योग्यता पर सभी मुग्ध थे।

एक दिन रजनी ने ड्यूटी पर जाकर देखा, आज उसे न्य की एक रोगिणी मिली है। एक-से-एक भयंकर केसेज रजनी ने देखे थे, परंतु इस पिगलवर्ण-युवती को देखकर एक बार वह सिहर उठा। प्रेत-प्रतिमा-सी इसकी देह में रक्त का नाम नहीं था। निस्तेज मुख-मंडल पर न-जाने कैसी वीभत्सता—कैसी भीषणता छायी हुई थी। उसके पास उसकी मा बैठी हुई थी और सिरहाने एक नवयुवक, जो उसका

तारे

पति मालूम होता था, खड़ा था। रजनी ने पास जाकर अत्यंत स्नेह के साथ उसका टेम्परेचर लिया—उसके फेफड़े देखे और यथासंभव विश्वास की रेखा अपने अधरों पर लाकर हड़कंठ से बोला—घबराने की बात नहीं है। आप पूर्णरूप से स्वस्थ हो जायँगी।

रोगिणी के आभाहीन चेहरे पर एक अवसाद-भरी हँसी की छाया दौड़ गयी।

रोगिणी के पति बोले—डॉक्टर साहब, अभी मेरी शादी हुए तीन साल भी नहीं हुए। लेकिन जो-जो कष्ट भोगने पड़े, उन्हें मैं ही जानता हूँ। इसी के पीछे—इसी की चिंता में मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया, पढ़ना-लिखना छूट गया और दिमाग में न-जाने कैसा पागलपन छा गया। मुझे भी अपना जीवन भारस्वरूप हो रहा है। यदि यह अच्छी हुई तो ठीक है, नहीं तो मेरा भी... कहते-कहते वह सचमुच रो पड़े।

रजनी ने गौर से रोगिणी को देखा। कभी इसके भी रूप के उभार में चढ़ते दिन रहे होंगे। लेकिन देखो तो इस विराट् महाचक्र का आवर्तन कितना निष्ठुर—कितना निर्दय है! आज कितनी फीकी—क्लांत और असह्य चेष्टा है। वह दमक वह ऐश्वर्य—वह आलोक और श्री-ताप—यौवन का तरंगालोड़न, कहीं कुछ भी तो नहीं। पति की व्यथा-वाणी सुनकर युवती की मर्मवेदना उसकी ज्योतिहीन सीप की भाँति बड़ी-बड़ी कुछ-कुछ पानीदार आँखों में झलक आयी। उसकी मा भी उदास होकर ज़मीन की ओर देखने लगी।

रजनी आज पहले-पहल ड्यूटी पर आया था। उसे मालूम हुआ कि रोगिणी को आज पंद्रह दिन आये हुए,

तारे

परंतु दिन-पर-दिन दशा खराब होती जाती है । जीवन की कोई आशा नहीं है और अब शायद वे यहाँ न रहेंगे ; पहाड़ से दिखाने ले आये थे ; फिर पहाड़ चले जायँगे । रजनी भी बराबर रोगिणी को देखता रहा और समय समाप्त होने पर फिर टेम्परेचर लेकर उसे नोट करके चला आया ।

उस समय रोगिणी को भूपकी-सी लग गयी थी ।

इसके बाद अकसर रजनी की ड्यूटी वहीं होती । रोगिणी धीरे-धीरे निःसत्व होती जा रही थी । जीवन का प्रकाश — जीवन का ताप दिन-पर-दिन उसमें दूर होता जा रहा था । जीवन के कलश और विलास के दिन रोग की प्राणघातक वेदना और आत्मदाह में कट रहे थे । परंतु किसी को भी — स्वयं रजनी को भी आशंका न थी कि यह सब कुछ हो जायगा और इतनी जल्दी आज ही ।

रात डेढ़ बजे का समय था । उसका पति और मा सो रही थी । केवल रजनी और एक नर्स जाग रही थी । रजनी के जाने का समय आ रहा था । नर्स भी कुछ-कुछ ऊँघने लगी थी । रजनी ने कहा—आप सो लीजिए (घड़ी देखकर) अभी आधा घंटे मैं यहाँ हूँ ।

सिस्टर वहीं एक आरामकुर्सी पर लुढ़क गयी । रजनी ने जेब से पान निकालकर खाये, रुमाल में वह हाथ पोंछ रहा था कि रोगिणी ने अत्यन्त धीमे स्वर में कहा—डॉक्टर साहब ! रजनी ने फौरन् पलंग के पास जाकर स्नेहदृष्टि से देखते हुए कहा—कहिए, क्या फिर छाती में दर्द होने लगा ?

युवती की छाती में इधर भयंकर दर्द हो चला था ।

युवती ने कहा—डॉक्टर साहब, आप अपनी कुर्सी यहीं

तारे

पास ही खींच लीजिए । न-जाने क्यों मेरा दिल बैठा जाता है ।

रजनी ने कुछ संकोच से कहा—इन लोगों को जगा दें ।

नहीं, डॉक्टर साहब ! आप ही से एक बात कहनी है । मुझे ऐसा मालूम होता है कि कुछ ही मिनटों में अब मेरा अंत है !

रजनी ने उत्सुक होकर उसकी ओर देखा—फिर स्टेशसकोप निकालकर हृदय की परीक्षा ली । सचमुच रोगिणी की यह विचित्र परिवर्तित दशा देखकर वह घबरा-सा गया ।

रोगिणी ने धीरे-धीरे रजनी की कुर्सी पर अपना हाथ रखकर कहा—डॉक्टर साहब, यदि मैं भूलती नहीं हूँ तो मैंने आपको दिल्ली में देखा है ।.....होटल में ।

“हाँ, मैं वहीं ठहरता हूँ । कब की बात है ?”

“तीन साल हुए ।”

रजनी ने कुछ विशेष उत्सुक होकर पूछा—“अच्छा, आप वहाँ कैसे पहुँचीं !”

“मैं सामने के मकान में रहती थी । आप तो भूल गये होंगे । लेकिन मैं तो नहीं.....”

ऐं, तो यह वही बालिका है ! रजनी चौंककर खड़ा हो गया । यह वही तेरह साल की अधखिली बालिका—वही रसवती किशोरी आज मृत्यु के भूले में भूल रही है ; रजनी तड़प उठा । वह उसे भूली नहीं है, पहचानती है ।

युवती ने धीरे, शिथिल, निष्प्राण स्वर से कहा—बैठ जाइए ।

रजनी बैठ गया । उसे एक गुलाबी नशा-सा चढ़ आया ।

तारे

उसने अत्यंत स्नेह के साथ युवती का रक्तहीन पिंगल हाथ अपने हाथ में ले लिया ।

युवती के मुख पर एक चमक-सी आयी और चली गयी ।

“आप तो वहाँ बहुत दिन रहे थे—डॉक्टर साहब ! मैं तो आपको देखते ही पहचान गयी थी । परंतु आप नहीं पहचान पाये ।”

रजनी के दिल में एक कसक-सी उठी । “न-जाने कौन से पाप उस जन्म में किये थे कि जीवन में यह वेदना मिली । मुझसे किसी को सुख न मिला । ‘उनका’ जीवन भी मैंने ही खराब किया ।” उसका गला भरने लगा । “डॉक्टर साहब—” युवती ने कुछ हिचकते हुए कहा—“न-जाने क्यों आपकी याद मुझे नहीं भूली । इस जीवन में यह पाप हुआ है । मैं विवाहित होकर, अपने स्वामी के चरणों की दासी—मेविका होकर भी आपको न भूल सकी । मेरे अंतर्दामी ! मेरे नाथ ! क्षमा करो ।”

रजनी मौन तपस्वी-सा अपने में ही लीन—निस्तब्ध बैठा था ।

“एक दिन आपका फोटो ‘पायोनियर’ में देखा था । न-जाने किस मोह से उसे फाड़कर रख लिया । एक दिन स्वामी ने उसे देखा तो बोले, यह कौन हैं । मैंने जब बतलाया तो मुस्कराने लगे । परंतु आपको शायद नहीं पहचाना ।” कहते-कहते उसे हिचकी आ गयी ।

रजनी अपना स्नेह-पुलकित हाथ उसके मस्तक पर फेरने लगा । परंतु उसने तुरंत जाकर युवती के पतिदेव को जगा दिया । वे अर्धविक्षिप्त में आकर वहाँ खड़े हो गये । युवती

तारे

ने उसी भाँति हिचकते हुए कहा—मुझसे बढ़कर सुभागिनी और अभागिनी कौन होगी । डाक्टर साहब ! अब इनको देखिएगा ।

इतने में दूसरी हिचकी !

युवक सब समझ गया । फूट-फूटकर रोता हुआ चारपाई के पास बैठ गया ।

युवती ने कहा—मैं पापिनी हूँ नाथ ! मेरे प्राण ! क्षमा । अब कब मिलोगे स्वामी !

युवती की बड़ी-बड़ी उभरी हुई आँखें विकृत हो गयीं । दो हिचकी और आयीं, बस !

रजनी का हाथ अब भी उसके मस्तक पर था । उसकी आँखों से टपटप आँसू गिर रहे थे ।

आधी रात की मायाविनी अखंड घड़ियों में स्वप्न की माया-मयी निधियाँ अपनी ही फटी हुई छाया में विलीन हो चलीं ।

x

x

x

कैसा चीर देनेवाला विचारचक्र है ! कैसी मर्मघाती हाहा-कारमयी स्मृति है ! प्राणेश्वरी रुबी के जीवनकाल में जिसे भूला-सा रहा ; वही आज प्राणों के इस छोर से उस छोर तक कसक रही है । फिर वे दिन—वह उठती हुई जवानी की उमंग-भरी याद तो और भी आग लगा देती है । क्यों न इस जीवन का इसी प्रज्वलित महावह्नि में सदैव के लिए अंत हो जाय !

प्रलय की यह रात भी देखो बीत चली । अपनी ही ज्वाला में भस्मासुर की भाँति जलता हुआ यह जीवन भी एक दिन इसी सरलता और उद्भावना से बीत जायगा । रजनी ने एक

दो सौ छब्बीस

तारे

बार फिर प्रभात की फटी हुई पीली छाया में रूबी के शिरीष सुकुमार मुख की ओर देखा, जैसे रजनी के इस छल पर, इस दुराव पर जिसे रजनी ने इन आठ सालों में कभी प्रकट नहीं किया—उसके इस अपराध पर वह एक अलक्ष्य कौतुक से मुस्कुरा रहा हो !



